MINOR LOCAL DEITIES IN ANCIENT INDIAN ART AND LITERATURE

A THESIS

submitted for the Degree of Doctor of Philosophy of the University of Allahabad

By

HARI PRASAD DUBEY

Under the Supervision of

DR. U. C. CHATTOPADHYAYA

DEPARTMENT OF ANCIENT HISTORY,
CULTURE & ARCHAEOLOGY
UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD-211 002

1992

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध प्राचीन भारत के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं पुरातात्विक आयामों के आलोक में विश्लेषित विशेष पक्ष का नवीन दृष्टिकोण में प्रस्तुत किया गया लघु प्रयास है। इस शोध-कार्य के लिए मैं गुरुवर डॉ० उमेश चन्द्र चट्टोपाध्याय का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर सतत् मार्गदर्शन के द्वारा इस शोध-कार्य को परिपूर्ण कराने में विशेष योगदान दिया है।

मैं उन सभी सम्माननीय विद्वानों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके द्वारा या जिनकी कृतियों से मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय का प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग जिनके आचार्यत्व से गौरवान्वित एवं विख्यात हुआ; उन अपने गुरुप्रवर प्रोफ़ेसर गोविन्द चन्द पाण्डेय (पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रोफ़ेसर जसवंत सिंह नेगी, प्रोफ़ेसर ब्रजनाथ सिंह यादव, प्रोफ़ेसर उदय नारायण राय, प्रोफ़ेसर सिद्धेश्वरी नारायण राय एवं वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर शिवेश चन्द्र भट्टाचार्य, प्रोफ़ेसर विद्याधर मिश्र द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन एवं आशीष के प्रति मैं आभारी हूँ।

मैं शोध विषयक सामग्री उपलब्ध कराने के लिए इलाहाबाद संग्रहालय एवं अन्य संस्थाओं के प्रति हार्दिक आभार मानता हूँ। मैं अपने मित्रों एवं अन्य सहयोगियों को भी धन्यवाद देता हूँ।

शैशवकाल से लेकर आजतक प्राप्त स्नेह, प्रेरणा के लिए मैं अपने परमपूज्य माता-पिता का अन्तर्मन से अतीव कृतज्ञ हूँ, जिनके त्याग एवं सहयोग से जीवन के सभी पक्षों को सम्बल मिलता आ रहा है। माता-पिता की स्नेह-दृष्टि सन्तान को सदा बाल्यकाल में ही देखती है। परिवार के अन्य सभी आत्मीयजनों का भी मैं आभार मानता हूँ।

अन्त में मैं अपने श्रद्धाभाजन ज्येष्ठ भ्राता श्री हरिहर दूबे का हृदय से आभार मानता हूँ जिनकी शुभकामना एवं आशीष से यह कार्य निर्विघ्न रूप से परिपूर्ण हो सका।

हरिप्रसाद दूबे

हरिप्रसाद दूबे

इलाहाबाद,
दीपावली
25 अक्टूबर 1992

प्र स्ता व ना

भारत के अतीत की सांस्कृतिक परम्पराएँ मानव-अवधारणाओं एवं अमूल्य निधियों द्वारा गौरवान्वित होती रही हैं। इसमें जहाँ एक ओर सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक जीवन के आयाम प्राप्त होते हैं, वहीं दूसरी ओर धर्म, कला, साहित्य का जीवन्त निदर्शन भी मिलता है। कला एवं साहित्य जैसी धरोहरों के आधार पर किसी पक्ष विशेष की गवेषणा का कार्य सरल हो जाता है। किसी युग के सम्यक् पुनरावलोकन के लिए इनकी उपादेयता विशेष रूप से रही है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वैदिक-पौराणिक देववर्ग हिन्दू मुख्यधारा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे प्रमुख देव समूह (Major Deities) के अंतर्गत रखा जा सकता है। ऋग्वैदिक काल में इन्द्र, रुद्र, मित्र, पर्जन्य, आपः, वायु, वात, अश्विन्, बृहस्पति, अग्नि, ऊषा, पृथ्वी, सूर्य, आदित्य, द्यौस, वरुण, सोम, सवितृ एवं नदी देवता का उल्लेख प्राप्त होता है।

पौराणिक काल तक आते-आते इन देवों की मान्यताओं में परिवर्तन आ गया था। विष्णु अब एक अत्यन्त उच्च स्थानीय देवता के रूप में प्रसिद्ध हुए, साथ ही साथ ब्रह्मा एवं शिव (वैदिक रुद्र) को भी पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी। इन्द्र, वरुण तथा अग्नि आदि जिनका वैदिक धर्म में उच्च स्थान था, अब उनकी लोकप्रियता सीमित दिखाई देती है। यदि इस वैदिक एवं पौराणिक परम्परा के अन्तर्गत आने वाले देव समूह को प्रमुख देव समूह (Major Deities) की

कोटि में रखा जाये जो वहीं लोक धर्म से सम्बन्धित ऐसे देव समूह (लघु देव समूह, Minor Deities) भी विद्यमान थे, जो किसी न किसी रूप में उभर कर आगे (Front line) आने का प्रयास कर रहे थे। उदाहरण के लिए, यक्ष, नाग, गणपति, हनुमान, पवित्र वृक्ष आदि की चर्चा की जा सकती है।

लघु देव समूह (Minor Deities) में कुछ ऐसे देवताओं की विशेष मान्यता थी जिनका सम्बन्ध स्थान विशेष से था। अतः इन्हें स्थानीय (Local) देवता भी कहा जा सकता है। लघु स्थानीय देवों की कोटि में यक्ष, नाग एवं पीपल (वृक्ष) की विशेष चर्चा की जा सकती है। भारतीय कला के उत्कर्ष की व्याख्या करते हुए एवं मुख्य हिन्दू धारा से ऐसे लघु स्थानीय देव समूह के वैषम्य को दिखाते हुए रॉसन महोदय इस प्रकार लिखते हैं :

"Hindu art developed later than Buddhist art in India as a whole. The oldest strictly brahmanical form of Hinduism demanded no permanent installation for its various sacrificial rituals. There is an enclosure at Besnagar in Madhya Pradesh, dated perhaps in the mid-second century B.C., where a named deity, Vasudeva, was worshiped. But the natural tendency of the Indian population has always been, since the remotest past, to adore and make offerings at any place in the country-side where the Divine seems to show its presence. Every village has a hallows-tree, a sacred ant-hill, or a holy spot marked by

boulders; its inhabitants are aware of spiritual, often humanoid, beings haunting sacred."[1]

वैदिक धार्मिक परम्परा में मूर्तिपूजा का कोई स्थान नहीं था ।[2] रॉसन महोदय के उक्त कथन से ऐसा लगता है कि आराध्य देव के मूर्त रूप में प्रदर्शित करने की जो परम्परा भारत के ऐतिहासिक युग में दिखाई देती है, उसकी प्रेरणा अवैदिक लोक धर्म से प्राप्त की गई थी । बुद्ध के बाद, ऐतिहासिक युग में यह परिवर्तन (आराध्य देव को मूर्त रूप देना) विशेष महत्व का था ।

लघु स्थानीय देव समूह (**Minor Local Deities**) का क्षेत्र यद्यपि व्यापक है, परन्तु इस शोध कार्य में विशेष रूप से यक्षों को ही विस्तारित किया जा रहा है क्योंकि एक तो साहित्य एवं कला से उन पर प्रभूत साक्ष्य प्राप्त होते हैं तथा दूसरे इनका प्रथम सहस्राब्दी ई0पू0 में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से विशेष महत्व है । तथापि नागों के विषय में भी चर्चा की जायेगी क्योंकि इनके बिना यक्षों का उल्लेख अपूर्ण रहता है । यक्षों एवं नागों के विषय में प्रथम सहस्राब्दी ई0पू0 (परवर्ती वैदिक काल) से लेकर शुंगकाल तक इस शोध प्रबन्ध में अध्ययन किया जा रहा है ।

---

1. रॉसन, पी0एस0, " अर्ली आर्ट ऐण्ड आर्की टेक्चर " (संपादित) ए0 एल0 बाशम, ए कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ 197-211 दिल्ली आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975
2. क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, वैदिक रेलीजन, वाराणसी, 1975

यक्षों एवं नागों पर, विशेष कर यक्षों पर सर्वोत्कृष्ट प्रथम प्रामाणिक कार्य आनन्द कुमार स्वामी का है । उन्होंने तत्सम्बन्धित साहित्यिक एवं कला विषयक साक्ष्य अपनी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ यक्ष (**Yakṣas**) में प्रस्तुत किया है । जैसा कि उन्होंने साहित्यिक स्रोतों का निरीक्षण करते हुए कहा है, " यक्ष " शब्द सर्वप्रथम जैमिनीय ब्राह्मण (III, 203, 272) में प्राप्त होता है ; जहाँ उसका अर्थ " एक आश्चर्य जनक वस्तु " (**Wondrous thing**) से बढ़कर कुछ नहीं है । " यक्ष " शब्द गृह्यसूत्र के पूर्व काल में नहीं प्राप्त होता है । गृह्य सूत्रों में यक्षों को अन्य प्रमुख (**Major**) एवं लघु (**Minor**) देव समूह के नाना प्रकार के सभी वर्ग के यजमानों के साथ अभिमन्त्रितकिया गया है ।

परवर्ती वैदिक गृह्यसूत्र में उन्हें भूतों की कोटि में रखा गया है ।[1] शिव भूतेश्वर है और यक्ष प्राय: भूत कहे गये हैं ; भूत शब्द का अर्थ - " वे जो (यक्ष) बन गये " हो सकता है । महावंश (अध्याय 10) में यक्ख भूत का अर्थ, वे जो यक्ष बन गये थे " हैं । परवर्ती साहित्य में यक्षों को रोगों के भूत-प्रेत के रूप में उल्लिखित किया गया है । शतपथ ब्राह्मण में कुबेर को राक्षसों एवं चोरों के स्वामी के रूप में वर्णित किया गया है, जिसका तात्पर्य मात्र यह हो सकता है कि वह ब्राह्मण सनातन पंथ (**Brahman Orthodoxy**) से भिन्न स्वभाव वाला एक प्राचीन (**Aboriginal**) देवता था ।

यक्षों का उल्लेख महाकाव्यों में प्राप्त होता है । रामायण (3/11/94) में " यक्षत्व अमरत्वम् " विवृत है । अमरता के साथ एक देवता

---

1. शांखायन गृह्य सूत्र, 4/9, अश्वालायन गृह्य सूत्र 3,/4, पारास्कर गृह्य सूत्र ए०बी०कीथ, रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेद । 2/12

द्वारा प्रदत्त वरदान का उल्लेख भी किया गया है । सात्विक वर्ग (Pure देवताओं की पूजा करता है । राजसिक (Passionate) वर्ग यक्षों एवं राक्षसों का तथा तामसिक (Dark) वर्ग के लोग प्रेत एवं भूत (महाभारत 6/41/4) की उपासना का वर्णन मिलता है ।

आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार, " यक्ष देवगण, अनार्य परम्परा से सम्बन्धित है । वे साधारणतः सम्पत्ति एवं जनन शक्ति से सम्बन्धित लाभ प्रदायक देव माने जा सकते हैं । यक्षों के स्वरूप एवं तत्कालीन धार्मिक अवधारणाओं के साथ उनके सम्बन्ध को कुमार स्वामी ने इस प्रकार बताया है :

"Before Buddhism and jainism they with a corresponding cosmology of the four or Eight Quarters of the Universe had been accepted as Orthodox in Brahmanical theology ... The designation Yaksa was originally practically synonymous with Deva or Devata, and Devas; every Hindu deity and even the Budha, is spoken of upon occasion, as a Yaksa. "Yaksa" may have been a non-Aryan, at any rate a popular designation equivalent to Deva, and only at a later date restricted to genii of lower rank than that of the greater gods... Yaksa concept has played an important part in the development of Indian mythology, and even more certainly, the early Yaksa conography. It is by no means without significance that the conception of Yaksattva

is so closely bound up with the idea of reicornation.

Thus the history of Yaksas, like that of other aspects of non-Aryan Indian animism, is of significance not only in itself and for its own sake, but as throwing light upon the origins of cult and iconography, as well as dogma, in fully evolved sectarian Hinduism and Buddhism ... Adherents of some "higher faiths" may be inclined to deprecate or to resent a tracing of their cults still more of dogmas, to sources associated with the worship of "rude deities and demons" (Jacobi) and "mysterious aboriginal creatreres" (Mrs. Rhys Davids)"[1]

---

1. कुमार स्वामी, ए0के0 ओरिजिन आफ दि बुद्ध इमेज, पृष्ठ 12, द्वितीय संस्करण (1972) नई दिल्ली एम0आर0एम0 लाल ।

कुमार स्वामी ने साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर यक्षों को स्थिति देवों एवं भूतों के मध्य बताया है । साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर कई प्रकार के यक्ष पाये जाते हैं : जैसे कुबेर वैश्रवण एवं मणिभद्र इत्यादि । उन्होंने यक्ष चैत्यों के विषय में हमारा ध्यान आकर्षित किया है—

"Yaksa caityas, etc. are constantly described as places of resort and suitable halting or resting places for travellers; Buddhist and jaina saints and monks are frequently introduced as resting or residing at the haunt of such and such a Yaksa, or in such and such a Yaksa ceiya (Punnabhadda ceiya, at supra; the Buddha, in many of the Yakka suttas of the Samyutta Nikaya)"[1]

कुमार स्वामी ने बुद्ध प्रतिमा की उत्पत्ति को एक ओर यक्षों से एवं दूसरी ओर भक्ति परम्परा से जोड़ा है ।[2]

नागों के विषय में भी कुमार स्वामी ने उल्लेख किया है जिसे यक्षों एवं नागों के साहित्यिक साक्ष्य नामक अध्याय में विस्तार से वर्णित किया गया है ।

आर०एन० मिश्र ने यक्षों पर विशिष्ट अनुसन्धान पूर्ण कार्य किया है । उन्होंने यक्षों का सम्बन्ध टोटम - परम्परा (**Totemism**), पूर्वज - उपासना

§ **Ancestorworship** § एवं जड़ात्मवाद § **Animism** § से बताया है।[1]
लोक परम्परा में यक्षों के महत्वपूर्ण स्थान को चर्चा करते हुए उन्होंने अच्छे एवं बुरे यक्षों के विषय में हमारा ध्यान आकृष्ट किया है :

"It is ... interesting that Yaksha's mythology is the comination of contraditions. There are good Yakshas and at the same time, bad ones. Some Yakshas relish human sacrifice, others specifically hate it some are behevolent, some malevolent ... Even in these cases it is different to ignore the fact that the Yakshas changed their evil nature under the influence of greater cult gods, such as Buddhap Mahavira, Bodhisattva, Jain, sages etc.[4]

यक्षों एवं नागों के विषय में अरूण महोदय का अभिमत है कि "यक्ष जाति भी बड़ी पुरातन जाति थी जो हिमालय में अन्य किरात वंशी जातियों, गन्धर्व, किन्नर, वानर, ऋक्ष आदि के साथ रहती थी"।[3] यक्षों का सम्बन्ध जन-जाति से जोड़ते हुए वे कहते हैं - " हमारे प्राचीन इतिहास में सैकड़ों जनजातियों का वर्णन है - नाग,गरूड़, सुपर्ण, श्येन, देव, असुर देव, मानव, यक्ष गन्धर्व किन्नर कि पुरूष राक्षस ऋक्ष वानर, निषाद आदि । नाग मुख्य जाति के अन्दर भी पचासियों उपजातियों के नाम हैं । नाग जाति सबसे पहले प्रसिद्ध हुई क्योंकि यह जल

यक्षों को जनजाति (Tribe) अर्थात् कोलाई जाति से सम्बन्धित अरूण की विचारधारा पूर्णरूप से यथार्थ के निकट नहीं प्रतीत होती है । इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अपने उल्लेख में यक्षों को मात्र एक सामाजिक वर्ग (यक्ष) से सम्पृक्त किया है । यक्षों को मात्र पहाड़ी जाति में रखना इस अर्थ में तर्कसंगत नहीं लगता है कि यक्षों की कलाकृतियाँ भारत के विभिन्न भूभागों से प्राप्त हुई हैं ।

इस शोध प्रबन्ध में मैंने यक्षों का अध्ययन तत्कालीन सामाजिक,आर्थिक एवं राजनैतिक विकास के सन्दर्भ में करने का प्रयास किया है । प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० में आर्थिक उन्नति हो रही थी । व्यापार एवं वाणिज्य विशेष उत्कर्ष की स्थिति प्राप्त कर रहा था । राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी । सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे । इस प्रक्रिया में विविध वर्गों का जहाँ योगदान था वे एक दूसरे से संघर्षरत थे । अपने वर्ग की पहचान के लिए जिस विचार-धारा (Ideology) की सहायता ली गयी, उसमें धर्म भी एक था, जैसा आगे वर्णित किया जायेगा । प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० की सामाजिक,आर्थिक,राजनैतिक गतिशीलता में यक्षों का उपरोक्त दृष्टि से विशेष महत्व दिखाई देता है ।

लघु देव समूह की उत्पत्ति एवं विकास को सम्यक समझने के प्रयास में साहित्यिक एवं कला विषयक साक्ष्य अवश्य उपादेय है, परन्तु पुरातत्व के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को सामने रखना अनिवार्य है । पुरातात्त्विक सिद्धान्तों में विगत एक दशक में जो विकास हुआ है उनका संक्षिप्त विवरण आवश्यक है क्योंकि इन पुरा-तात्त्विक सिद्धान्तों में भौतिक संस्कृति एवं सामाजिक परिवर्तन पर विशेष बल दिया

गया है । इस प्रकार के सैद्धान्तिक पुरातत्व में ; जिसे "Post-Processual Archaeology " की संज्ञा दी गयी है [1] एक ओर तो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के आवश्यकता की बात कही गयी है तो दूसरी ओर रिचर्डकालिंग वुड [2] के मतों से प्रेरित होकर इस मान्यता पर बल दिया गया है कि मानव क्रियाओं में " उद्देश्य " अर्न्तनिहित है ।

इस सम्बन्ध में यह विशेष उल्लेखनीय है कि " Post-Processual Archaeology पुरातत्व के पहले, अर्थात् नव पुरातत्व (New Archaeology)[3] में मानव व्यवहार का सीधा सम्बन्ध बाह्य शक्तियों (वातावरण आदि) से जोड़ा गया था ।

इसके साथ ही साथ शिल्प तथ्यों (Artefacts) के क्रियात्मक (Functional) अर्थ पर ध्यान केन्द्रित किया गया था । सामाजिक परिवर्तन को मात्र तकनीकी एवं वातावरण के परिवर्तन से ही समझने का प्रयास किया गया था । इसके विपरीत Post-Processual Archaeology ने मानव व्यवहार के जटिल (आन्तरिक) पक्ष पर बल दिया है न कि वातावरण सदृश पक्ष तथा शिल्प तथ्यों के सांकेतिक अर्थ को स्पष्ट (Highlight) करने पर विशेष बल दिया गया है ।

---

1. आई० हाडर, " सिम्बालिक एण्ड स्ट्रक्चरल आर्कियोलाजी, कैम्ब्रिज 1982, इसके अतिरिक्त देखिए, इयन हाडर, रीडिंग दी पास्ट कैम्ब्रिज 1986 ।
2. आर०जी०कालिंग वुड, दि आइडिया आफ हिस्ट्री, आक्सफोर्ड, 1946 ।
3. एल०आर० बिनफोर्ड, ऐन आर्कियोलोजिकल पर्सपेक्टिव, न्यूयार्क, 1971 ।

उत्तर प्रक्रियात्मक पुरातत्व (Post-processual Archeaology) की आधारशिला इस मान्यता पर अवलम्बित है कि भौतिक संस्कृति अर्थपूर्ण ढंग से संस्थापित की जाती है।[1] पुरातात्विक अवशेष अतीत के समाज का एक निष्क्रिय प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है, बल्कि उसे उस निरूपण की प्रक्रिया से समझा जा सकता है जो सामाजिक सम्बन्धों को एक ओर बनाती है तो दूसरी ओर प्रदर्शित करती है।[2]

ऐतिहासिक परिवर्तनों को समझने के लिये सामाजिक सम्बन्ध, राजनैतिक विरचन (Political Formation) तथा विचारधारा (Ideology) को नकारा नहीं जा सकता है। अत: डैनी मिलर ने जिस विचारधारा के प्रतिमान की बात कही है और जो इस शोध प्रबन्ध से घनिष्ठता रखती है उसके अनुसार शिल्प तथ्यों, जैसे प्रतिमा, भवन, मुद्रा, मृद्भाण्ड आदि का जो भी क्रियात्मक अभिप्राय हो सभी शिल्प तथ्य वे रूप हैं जिनके द्वारा समाज अपनी अभिव्यक्ति की सृष्टि करता है। परन्तु यह अभिव्यक्ति सर्वथा यथार्थवादी नहीं है; प्राय: उक्त अभिव्यक्ति संगोपन की योजना (Strategy of concealment) द्वारा होती है।[3] इस सम्बन्ध में डैनी मिलर का कथन है : "A particular array of forms may represent the interests of a particular group and mask those of subordinate elements in society who

---

1- "material culture was meaningfully constituted". इयन हार्डर, रीडिंग दि पास्ट, पृष्ठ 1, कैम्ब्रिज।

2- डैनी मिलर, आइडियोलाजी एण्ड दि हड़प्पन सिविलाइजेशन, जर्नल ऑफ अंथ्रोपोलिजिकल आर्क्योलोजी, खण्ड-4, पृष्ठ 34-71, (1985)

3- डैनी मिलर, उपरोक्त।

have no access to control over the forms taken by cultural property".[1]

तात्पर्य यह है कि जहाँ कई वर्ग सामाजिक सम्बन्ध से जुड़े हैं उनमें से एक प्रबल वर्ग दूसरे वर्ग के अस्तित्व को नकारते हुए अपनी अभिव्यक्ति को किसी विशेष रूप में सामने रखने का प्रयास करता है। इस प्रकार इतिहास ऐसे प्रतियोगी वर्गों के संघर्ष, जो कि एक गतिशील प्रक्रिया है, से निर्मित माना जा सकता है।

जैसा ऊपर कहा गया है, ऐतिहासिक संदर्भ पुरातत्व में विशेष स्थान रखता है। अतः इस प्रकार के सैधान्तिक पुरातत्व में सन्दर्भीय व्याख्या पर विशेष बल दिया गया है।[2]

भारतीय सामाजिक संरचना, सामाजिक सम्बन्ध एवं आजीविका (Subsistence) को समझने का एक सन्दर्भीय प्रतिमान (Model) प्रस्तुत किया गया है।[3] यह प्रतिमान पारिस्थितिकी या परिस्थिति विज्ञान (Ecology), मानव-विज्ञान (Anthropology), इतिहास एवं जन-इतिहास (History and Ethnohistory) पर आधारित है।

महाराष्ट्र के रत्नागिरि क्षेत्र में के0सी0 मल्होत्रा तथा एस गाडगिल ने

1- डैनीमिलर, गत पृष्ठ पर वर्णित
2- इयन हॉडर (संपादित) सिम्बालिक ऐण्ड स्ट्रक्चरल आर्कियोलोजी, कैम्ब्रिज 1982
3- यू0सी0 चट्टोपाध्याय,'ए स्टडी आफ सबसिस्टेन्स एण्ड सेटलमेंट पैटर्न्स ड्यूरिंग दी लेट प्री हिस्ट्री आफ नार्थ सेन्ट्रल इंडिया।" अप्रकाशित पीएच0डी0 शोध प्रबन्ध, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, 1990.

मानवीय अध्ययन के आधार पर यह प्रदर्शित किया है कि एक विस्तृत क्षेत्र (भूभाग), जहाँ विविध प्रकार के संसाधन पृथक-पृथक पाकेटों (Niches) में प्राप्य हैं; का उपयोग विभिन्न प्रकार का विशिष्ट जनसमुदाय (Specialized Community) करता है।[1]

उक्त अध्ययन क्षेत्र में जिन विशिष्ट वर्गों को वर्णित किया गया है, वे हैं : खेतीहर कुन्बी, भेड़पालक हटकर एवं ग्वाली; जिनका सम्बन्ध भैसों से है। इसके अतिरिक्त कुछ घुमक्कड़, अ-पशुचारणिक (Non Pastoralist) समुदाय भी है : जैसे नन्दिवाला, वैडू एवं फसेपरधि - जो कभी शिकारी-संग्रहक थे परन्तु अब अपने मूल स्वभाव के अनुरूप कुछ और प्रकार के व्यवसायों में संलग्न हैं। इनमें से कुछ का पेशा मनोरंजन कार्य (नृत्य, गायन आदि) से सम्बन्धित था, तो अन्य का जंगली संसाधनो, विशेष करके उन जड़ी बूटियों से, जिनका प्रयोग औषधि निर्माण के लिये किया जाता था।

इस प्रकार स्थिति यह है कि उपरोक्त भूभाग के सम्पूर्ण संसाधन को विशिष्ट जन समुदाय आपस में विभक्त कर उपभोग करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पृथक सामाजिक वर्गों का निर्माण होता है जो सामाजिक विभेद को रखते हुए आर्थिक दृष्टि से एक-दूसरे के परिपूरक हैं। एक संसाधन के लिए सभी वर्ग प्रतियोगी नहीं होते। प्रत्येक विशिष्ट वर्ग को अपने-अपने संसाधन के प्रयोग (उपभोग, Exploitation) में स्वतन्त्रता थी। ऐसी वर्ग प्राय: अपनी विशिष्ट सामाजिक

1- एम० गाडगिल एवं के०सी० मल्होत्रा; एडैप्टिव सिग्नीफिकेन्स ऑफ दा इण्डियन कास्ट सिस्टम : इन इकोलाजिकल पर्सपेक्टिव; एनल्स आफ ह्यूमन बायोलाजी, भाग 10, पृष्ठ 465-78, 1983.

पहचान (Social Identity) बनाये रखने का प्रयास भी करते हैं, जिसे वे विविध प्रकार की रीति अथवा विशेष ढंग (Style) भौतिक एवं अभौतिक द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। भौतिक ढंग (तत्व) से तात्पर्य है - टोटम चिन्ह, वेशभूषा अधिवास-व्यवस्था आदि। अभौतिक ढंग (तत्व) के अन्तर्गत आते हैं - बोलचाल की भाषा (Dialect) बोली में प्रयुक्त स्वर अथवा विचारधारा (Ideology) जिसमें वे सभी तत्व सम्मिलित हैं जिनको आमतौर पर धर्म या मिथक (Mythology) की संज्ञा दी जाती है।

जैसा ऊपर कहा गया है, सामाजिक दृष्टि से इन विभिन्न वर्गों में अवरोध (Barriers) के बावजूद आर्थिक दृष्टि से ये एक दूसरे से जुड़े हैं। इस प्रकार ऐसे वर्ग एक दूसरे के सम्पूरक के रूप में एक सामाजिक सम्बन्ध में सम्पृक्त हैं। इनका वैवाहिक सम्बन्ध अपने ही वर्ग विशेष में होता है तथा आर्थिक विशिष्टीकरण तत्सम्बन्धित वर्ग विशेष में सीमित रहता है। तात्पर्य यह है कि उपलब्ध पर्यावरण को विशिष्ट वर्गों में विभक्त कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को आर्थिक दबाव का एक सामाजिक हल (Social solution to economic stress माना जा सकता है।[1]

अन्तर्वर्गीय संघर्ष को कम करने का यह एक अनूठा सामाजिक तरीका है जो विशेषकर दक्षिणी एशिया के सन्दर्भ में उपयुक्त है। इस प्रकार की व्यवस्था पारि-स्थितिकीय सम्पूरकी के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसका विकास निम्नलिखित

1- यू०सी० चट्टोपाध्याय, गत पृष्ठ पर वर्णित।

प्रतिबन्धों में सम्भव है :

1- पर्यावरणीय विषमता या भूमि में भौतिक अवरोध।

2- जनसंख्या में यथेष्ट वृद्धि।

3- सीमित परन्तु महत्वपूर्ण संसाधनों के लिए प्रतियोगिता।

यू0सी0 चट्टोपाध्याय के अनुसार भारतीय उप-महाद्वीप में यह तीनों अवस्थाएं कम-से-कम अद्यतनकाल (Holocene Period) के प्रारंभ (लगभग 10,000 वर्ष पूर्व) से दिखाई पड़ती हैं। परम्परागत भारतीय समाज को समझने का यह एक सन्दर्भीय प्रतिमान है, जिसकी सम्पुष्टि ऐतिहासिक साक्ष्यों[1] के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों[2] के आलोक में भी होती है।

भारतीय वर्ण या जातिव्यवस्था को समझने की यह एक पारिस्थितिकीय व्याख्या है। चार वर्गों में विभाजित जाति या वर्ण-व्यवस्था एक 'आदर्श' व्यवस्था है; वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज सहस्रों अन्तर्जात (Endogamous) व्यावसायिक वर्गों में विभक्त है। जाति के पारिस्थितिकीय व्याख्या एवं अन्तर्जातीय सम्बन्ध आदि को निम्न ढंग से व्यक्त किया गया है :-

" Indian society is an agglomeration of several thousand endogamous groups or castes each with a restricted geographical

---

1- इस सन्दर्भ में विशेषकर संगम साहित्य का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। देखिये, ब्रायन मॉरिस, 'दि फैमिली, ग्रुप स्ट्रक्चरिंग ऐण्ड ट्रेड अमंग साउथ इन्डियन हन्टरगैदरर्स', ई0 लीकॉक एवं आर0बी0ली (संपादित), पालिटिक्स ऐण्ड हिस्ट्री इन बैण्ड सोसाइटीज, पृष्ठ 171-87, कैम्ब्रिज, 1982.

2- यू0सी0 चट्टोपाध्याय, गत पृष्ठ पर वर्णित

range and a hereditarily determined mode of subsistence. The ecological-niche-relationships of castes .... are directly dependent on natural resources .... castes living together in the same region had so organized their pattern of resource use as to avoid excessive intercaste competition for limiting resources. Furthermore, territorial division of the total range of the caste regulated intra-caste competition. Hence, a particular plant or animal resource in a given locality was used almost exclusively by a given lineage within a caste generation after generation. This favoured the cultural evolution of traditions ensuring sustainable use of natural resources. This must have contributed sigtnificantly to the stability of Indian caste society over several thousand years. The collapse of the base of natural resources and increasing monetarization of the economy has, however, destroyed the earlier complementarity between the different castes and led to increasing conflicts between them in recent years"[1]

सम्पूरकी सिद्धान्त पर आधारित इस सामाजिक व्यवस्था को आधुनिक जीव-वैज्ञानिक सिद्धान्त (Biological Theory) का समर्थन प्राप्त है।

1- गाडगिल एवं मल्होत्रा, गत पृष्ठ पर वर्णित

कर्च महोदय के अनुसार अनुकूली योजना ﴾Adaptive Strategy ﴿ इस प्रकार से परिभाषित की जा सकती है : "the set of culturally transimitted behaviors - extractive, exploitative, ... competitive, mutualistic, and the like -- with which a population interacts and interfaces with its natural and social environment"[1]

एक जनसंख्या की अपने सामाजिक वातावरण के साथ अन्योन्यक्रिया ﴾Interactions﴿ की स्थिति में, विशेषकर जहाँ संकीर्ण संसाधन अथवा भूमि के लिए अन्तर्वर्गीय प्रतियोगिता का प्रश्न उठता है, दो प्रकार के व्यवहार की सम्भावना उत्पन्न होती है : ﴾1﴿ आक्रमणशील ﴾aggressive ﴿ एवं ﴾2﴿ पारस्परिकता ﴾mutualistic ﴿; दोनों का पृथक परिस्थितियों में अपना अनुकूली महत्व ﴾adaptive significance﴿ है।[2]

अर्न्तवर्गीय संघर्ष के विकास के सन्दर्भ में सामाजिक-जीव वैज्ञानिक, डरहम महोदय का कथन है कि सामूहिक आक्रमण एक साधन न कि एक मात्र साधन है जिससे एक समुदाय अपनी भौतिक अवस्था को सुदृढ़ करता हुआ सामाजिक पुनरुत्पादन करता है।[3] इसके विपरीत, उसी उद्देश्य की पूर्ति अहिंसात्मक, पारस्परिकता के

1- पी0वी0 कर्च, दि आर्कियोलोजिकल स्टडी ऑफ एडेप्टेशन : थियोरेटिकल ऐण्ड मेथोडोलोजिकल इश्यूज, ऐडवान्सेज इन आर्कियोलोजिकल मेथड्स ऐण्ड थियोरी, खण्ड-3, पृष्ठ 101-156.

2- डबल्यू0एच0 डरहम 'रिसोर्स काम्पिटीशन ऐण्ड ह्यूमन एग्रेशन पार्ट । : ए रिव्यू ऑफ प्रिमिटिव वॉर। क्वार्टरनरी रिव्यू ऑफ बायोलाजी, खण्ड 51 पृष्ठ 386 ﴾1976﴿.

माध्यम से भी सम्भव है, जैसा कि आधुनिक जीव वैज्ञानिक-सिद्धांतों में वर्णित है : gene competition ironically promotes cooperation among conpecitics and mutualism among interspecifics in any circumstance where these relationships can result in mutually enchanced fitness ... . In addition, a number of resent the describe ways by which altruistic or self-sacrificing attributes can evolve by natural selection even though they may superficially appear to have more individual costs than benfits".[1]

सम्पूरकी के सिद्धान्त पर भारतीय समाज के उपर्युक्त प्रतिमान के विषय में चट्टोपाध्याय लिखते हैं - "It highlights the process of population diversifications (Cladogenetic mode of evolutions) as apposed to anagenetic mode of evolutions) into ecologically/socially partitioned and economically inter-dependent specialised communities, often with lineal corporate group behaviour and socio/regional identities.[2]

1- डरहम, उपरोक्त, पृष्ठ 386

2- यू०सी० चट्टोपाध्याय, एगेन्स्ट प्रेडिक्टिव लॉज इन आर्कियोलोजी, अध्ययन, खण्ड 2, पृष्ठ 94.

सम्पूरकी के सिद्धान्त पर आधारित जिस सामाजिक सम्बन्ध एवं व्यवस्था के प्रतिमान की बात कही गई है, वह भी एक आदर्श व्यवस्था है। वास्तव में सामाजिक सम्बन्ध में जुड़े विभिन्न वर्गों के परस्पर सम्बन्ध सर्वथा सम मित नहीं होते, बल्कि उसमें असंतुलन की संभावना अधिक होती है। अत: इस प्रकार के असन्तुलन के परिणामस्वरूप एक ओर तो वर्गों की पृथक सामाजिक पहचान प्रति-विम्बित होती है तो दूसरी ओर यह असंतुलन उक्त सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक व्यवस्था को स्थायित्व एवं निरन्तरता (countineuty) भी प्रदान करता है।[1]

सम्पूरकी के सिद्धान्त पर आधारित उक्त प्रतिमान एवं उससे उद्भूत परि-कल्पनाएँ प्राचीन भारतीय सामाजिक-आर्थिक इतिहास समझने में विशेष सहायक हैं। इस प्रतिमान के अनुसार जिन विशिष्ट (specialized) वर्गों का अभ्युदय होता है, वे विशेष परिस्थितियों में वंशगत निगम (Lineal corporate) का रूप धारण करते हैं। प्रसंगत: यह उल्लेखनीय है कि इस शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित क्षेत्र एवं काल में ऐसे अनेक निगमों का उल्लेख साहित्यिक एवं अभिलेखीय स्रोतों से प्राप्त होता है।[2] उक्त प्रतिमान में यह भी कहा गया है कि ऐसे वर्ग प्राय: अपनी विशिष्ट सामाजिक पहिचान के संस्थापन के लिए प्रयासरत रहते हैं। परन्तु यह प्रक्रिया सांकेतिक ढंग से किस प्रकार सम्भव हो सकती है, इसके लिए निम्नलिखित समीक्षा पर ध्यान देना आवश्यक है।

1- एम० सालिन्स, स्टोन एज इकोनामिक्स, ब्रिस्टल, 1974.

2- आर०सी० मजूमदार, कार्पोरेट लाइफ इन ऐन्शियन्ट इन्डिया, कलकत्ता, 1918.

एक अन्य सन्दर्भ {मृतक संस्कार के अभ्यास} में आर्थर सैक्स महोदय ने सीमित मानव वैज्ञानिक साक्ष्यों के आधार पर यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि जब कोई वंशगत निगम {Lineal corporate } किसी संकीर्ण परन्तु आवश्यक संसाधन पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है, तो वह उस क्षेत्र में स्थायी शवाधान {सांकेतिक ढंग से जो पूर्वजों से सम्बन्धित है} की व्यवस्था भी करता है।[1] इसके विपरीत एक पुरातात्विक स्थल पर यदि कोई स्थायी शवाधान प्राप्त होता है, तो वह इस बात का परिचायक है कि उक्त स्थल का सम्बन्ध किसी वंशगत निगम से था। परन्तु इस मत की समीक्षा करते हुए गोल्डस्टाइन महोदया कहती हैं :

" the hypothesis did not work in both directions : not all corporate groups that control crucial and restricted resources through lineal descent will maintain formal, bounded disposal areas exclusively for their dead"[2]

गोल्डस्टाइन ने एक संशोधित प्राक्कल्पना { hypothesis } का सुझाव प्रस्तुत किया है जो उन्हीं के शब्दों में निम्नलिखित है : "To the degree that corporate group rights to use and/or control crucial but restricted resources are attained and/or legitimised by lineal descent from the dead (i.e. lineal ties to ancestors), such groups

---

1- यू०सी० चट्टोपाध्याय, ए स्टडी ऑफ सबसिस्टेंस एण्ड सेटलमेंट पैटर्न्स ड्यूरिंग दी लेट प्री हिस्ट्री ऑफ नार्थ सेन्ट्रल इंडिया, अप्रकाशित पीएच०डी० शोध प्रबन्ध , कैम्ब्रिज वि०वि०, 1990.

2- एल० गोल्डस्टाइन, वन डाइमेन्शनल आर्कियोलोजी एण्ड मल्टीडाइमेन्शनल पीपुल: स्पैशियल आर्गेनाइजेशन एण्ड मार्चुवरी एनालिसिस। आर० चैपमैन, आई०किन्स एवं के० रैण्डसबर्ग{सं०},आर्कियोलोजी ऑफ डेथ पृ० 60-61, कैम्ब्रिज, 1981.

will, by the popular religion and its ritualisation, regularly reaffirm the lineal corporate group and its rights. One means of ritualisation is the maintenance of a permanent, specialised, bounded area for the exclusive disposal of their dead." [1]

इस कथन का आशय यह है कि वंशगत नैगमिक अधिकार स्थापित करने का शवाधान एक सांकेतिक प्रयास हो सकता है, जिसकी अभिपुष्टि जनप्रिय धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से होती है। वहीं गोल्डस्टाइन ने सैक्स के द्वितीय कथन की पुष्टि की है कि यदि किसी पुरास्थल पर स्थायी शवाधान है एवं तत्सम्बन्धित अनुष्ठानों का साक्ष्य उपलब्ध है, तो यह इस बात का परिचायक है कि पुरास्थल का सम्बन्ध किसी वंशगत निगम से था।

गोल्डस्टाइन के उक्त प्राक्कल्पनाओं से दो नवीन तथ्य सामने आते हैं जिनका इस शोध प्रबन्ध की दृष्टि से विशेष महत्व है। प्रथम यह है कि वंशगत नैगमिक अधिकार की संस्थापना हेतु ऐसे सांकेतिक अनुष्ठान का अभ्यास किया जाता है जो जनप्रिय धर्म से प्रेरित भी है एवं समर्थित भी। यह तथ्य इस शोध प्रबन्ध के उस मान्यता को चरितार्थ करता हुआ ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार धर्म और समाज का पृथक अध्ययन एकांगी प्रक्रिया है; धर्म एवं समाज घनिष्ठता से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं एवं ये एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में, धर्म,

विशेषकर उसका आनुष्ठानिक पक्ष ऊपर से आरोपित एक अपरिवर्तनशील तत्व नहीं है, बल्कि वह गतिशील सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं से घनिष्ठता से जुड़ा है। दूसरा तथ्य §सैक्स की मान्यता के विपरीत§ यह है कि संकीर्ण और आवश्यक संसाधन पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए एवं वंशगत नैगमिक अधिकार को संस्थापित करने के लिए जिस सांकेतिक अभ्यास §शवाधान§ की बात कही गई है वह एक, न कि एकमात्र अभ्यास है। जनप्रिय धर्म से सम्बन्धित अन्य प्रकार के अनुष्ठानों या अभ्यासों की भी सम्भावना प्रबल है जो सांकेतिक रूप से वही कार्य करते हैं जो एक स्थायी शवाधान के बारे में कहा गया है। उदाहरण के लिए ऐसी स्थानीय देव-समूह की कल्पना एवं उनकी मूर्तरूप में आवास या क्षेत्र विशेष में आराधना का अनुष्ठान भी उसी अभिप्राय के संकेत सूचक हो सकते हैं जिसकी चर्चा सैक्स तथा गोल्डस्टाइन ने की है। भारत में प्राचीन काल से आजतक विशेषकर ग्रामों एवं वनों में ऐसे स्थानीय देवों की पूजा की जाती है जो वहाँ के समुदाय विशेष को क्षेत्रीय सुरक्षा एवं अधिकार §Territorial security and rights § प्रदान करता है। इस शोध प्रबन्ध के अधीन क्षेत्र एवं काल में यक्षों की विशेष चर्चा की गयी है जो कुमार स्वामी के अनुसार विशेष संसाधनों के संरक्षण देवता भी हैं एवं जिनका सम्बन्ध आर0एन0 मिश्र के अनुसार आदिवासी पूर्वज उपासना एवं टोटम परम्परा से है। सम्पत्ति या स्थायी §Source of natural wealth § §खनिज, कृषि क्षेत्र आदि§ के स्वामी ये यक्ष तत्सम्बन्धित व्यवसाय को सुरक्षा प्रदान करते के साथ-साथ ऐसे वंशगत निगमों की विशेष सामाजिक पहिचान भी प्रदान करते हैं। यही बात नागों के विषय में भी कही जा सकती है।

उपर्युक्त तथ्य यक्षों की उत्पत्ति विषयक एक विविध पक्षीय (मानव वैज्ञानिक, पारिस्थितिकीय आदि) नई व्याख्या के रूप में सामने आती है। यह शोध प्रबन्ध इस दृष्टिकोण को प्रदर्शित Project करने का एक लघु प्रयासमात्र है। विषय की गम्भीरता एवं जटिलता को देखते हुए यहाँ स्वीकार किया जा रहा है कि यह कोई अन्तिम निष्कर्ष नहीं है बल्कि एक नये दृष्टिकोण का प्रारंभ है। यक्षों एवं नागों की समीक्षा करते हुए आगे यह देखने का प्रयास किया जायेगा कि किस प्रकार एक हिन्दू मुख्यधारा के समानान्तर किन्तु पृथक् लोकधर्म में विकसित एवं पल्लवित तथा जनों के सामाजिक आर्थिक समस्या से जुड़ी यक्ष परम्परा ने किस प्रकार भारतीय इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई एवं विशेषत: किस प्रकार छठीं शताब्दी ई0पू0 के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन में बौद्ध-धर्म के उत्थान में सहायक बनी।

2. सामाजिक – राजनैतिक परिवर्तन

प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण इतिहास में राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण स्थान है । इन सभी पक्षों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है । मानव जीवन में चार अभाव दृष्टिगोचर होते हैं । उनमें सर्वप्रथम है – ज्ञान का अभाव; द्वितीय हैं – सुरक्षा का अभाव ; तृतीय हैं – अन्न का अभाव और चतुर्थ हैं – साधनों का अभाव । लोक कल्याण की दृष्टि से इन अभावों की मुक्ति आवश्यक है । समाज का संगठन इन्हीं अभावों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए किया गया है । यह सबसे प्राचीन श्रम विभाजन माना जा सकता है ।

भारतीय समाज में नियमों, आदर्शों, व्यवहारों तथा सामाजिक विचारों में आमूल चूल परिवर्तन का क्रम जारी रहा । जीवन का प्रत्येक क्षेत्र नवीन आचारों एवं आदर्शों से अछूता न रहा । विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया गया । सामाजिक व्यवस्था की जड़ें धर्म के आधार पर ही टिकी मिलती हैं । सामाजिक कार्यों में धर्म की व्यापकता है, जो उसकी स्थिति सुधारने में सहयोगी है ।

भारतीय समाज एवं संस्कृति द्वारा समान संस्कृति से समन्वय स्थापित करना एक परम्परा के रूप में रही है । सामाजिक संस्थाओं के नियमों में भी समन्वय की भावना मिलती है । समय एवं परिस्थिति के अनुसार समाज में ग्रहण करने का क्रम चलता ही रहा ।

उत्तर वैदिक ﴾ प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० ﴿ में कालीन परिवार में पिता का स्थान सर्वोपरि था । सामाजिक जीवन में कुल का विशेष महत्व माना

जाता था । पिता के अधिकार व्यापक थे । पिता अपने पुत्रों को उत्तराधिकार से वंचित भी करने में स्वतन्त्र था । ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार अजीगर्त ने अपने पुत्र को सौ गाय लेकर बेंच दिया था ।

जटिलता के कारण वर्ण का (जाति) में परिवर्तन हो रहा था । शतपथ ब्राह्मण में चतुर्वर्ण के अन्तिम संस्कार के लिए चार प्रकार के टीले का वर्णन किया गया है । वर्ण भेद क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हो रहा था । विभिन्न धार्मिक श्रेणियाँ उद्भूत होकर समाज में जातियों का स्वरूप धारण कर रही थी । व्यवसाय अब वंशानुगत होने लगा । धातुकार, रथकार, एवं चर्मकार जातियाँ निर्मित होती गयीं ।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मणों को दान प्रदान करने वाले (आदायी) सोमपायी एवं स्वेच्छा भ्रमण कार्य करने वाले (यथाकाम प्रयाप्य) कहे गये हैं । यज्ञ - प्रभाव के कारण ब्राह्मणों को शक्ति बढ़ती दृष्टिगोचर होती है । क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों में सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए होड़ लगी हुई थी ।

उत्तर वैदिक काल के अन्त तक इन दो उच्च वर्णों के अलावा वैश्य-कोटि सामान्य लोगों को समाहित कर लिया गया । वे पशुपालन तथा कृषि कार्य में रुचि लेते थे । उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में शूद्रों एवं तीन वर्णों के मध्य एक भेद की स्पष्ट झलक मिलती है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक अस्पृश्यता का उदय नहीं हुआ था । सोम यज्ञ में शूद्रों द्वारा भाग लेने की स्वतन्त्रता उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में किया गया है । छान्दोग्य उपनिषद एवं वृहदारण्यक ग्रन्थों के अनुसार " सभी लोग ब्रह्म लोक में एक समान हैं" की मान्यता का उल्लेख किया गया है ।

इस काल में गोत्र व्यवस्था की स्थापना की गयी । सर्वप्रथम तो इसका अर्थ उस स्थान से माना गया, जहाँ सम्पूर्ण कुल का गोधन सुरक्षित रहता था । कालान्तर में इसका अर्थ एक मूल पुरूष के वंशज के रूप में जाना जाने लगा । समाज में गोत्रीय बहिर्विवाह की परम्परा आरम्भ हो चुकी थी । समाज में नारी सम्मान के साक्ष्य प्राप्त होते हैं । उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी । ऋग्वैदिक समाज की अपेक्षा इस समय नारियों की स्थिति में ह्रास प्रतीत होता है। अर्थववेद में कन्याओं की जन्म निन्दित रूप में जाना गया है । उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में प्रारम्भिक तीन आश्रमों के विषय में स्पष्ट ज्ञात होता है । अन्तिम आश्रम की स्थापना के विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है ।

वैदिक साहित्य में विवाह से सम्बन्धित साक्ष्य भी प्राप्त होते हैं । अथर्ववेद में ऐसी कन्याओं का वर्णन है जो आजीवन अपने माता पिता के साथ अविवाहित रहती थीं।[1] अविवाहित पुरूष का यज्ञ कर्म करना वर्जित था ।[2] स्त्री पुरूष को पूर्ण बनाती है ।[3] यद्यपि एक पत्नी विवाह का आदर्श अभी भी मान्य था परन्तु बहु पत्नी विवाह का पर्याप्त प्रचलन था ।[4] सबसे पहली पत्नी को प्रमुख पत्नी होने का विशेषाधिकार प्राप्त था । मैत्रेयी एवं कात्यायनी याज्ञवल्क्य के दो पत्नियां थीं ।

---

1. अथर्ववेद 1/14/3
2. शतपथ ब्राहमण 5/1/6/10
3. शतपथ ब्राहमण 5/2/1/10
4. ऐतरेय ब्राहमण 12/11

गुरु के पास विद्यार्थी का उपनयन संस्कार होता था । विद्यार्थी जीवन सरल किन्तु कठोर था । महत्वपूर्ण विषयों पर वार्ता के लिए सभी विद्वान एवं विदुषियां सम्मेलन में सम्मिलित होते थे । उपनिषदों में मैत्रेयी तथा उसके पति याज्ञवल्क्य के वार्ता का उल्लेख है । अध्ययन के विषय दर्शन, पुराण, देवविद्या, व्याकरण ब्रह्म विद्या, क्षात्र विद्या, भूत विद्या, सर्प विद्या, नक्षत्र विद्या, प्रभृति सम्मिलित थे । बृहदारण्यक उपनिषद में जनक की सभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बाद विवाद का वर्णन है ।[1] तैत्तिरीय एवं मैत्रायणी संहिता के अनुसार स्त्रियों की संगीत, नृत्य में बड़ी रुचि होती है ।[2]

उत्तर वैदिक काल में समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था । वर्ग विभाजन इस प्रकार था कि क्षत्रिय एवं ब्राह्मण अनुत्पादी होते हुए भी अधिकार सम्पन्न थे । वे उत्पादन का नियंत्रण करने वाले थे । शूद्र एवं वैश्य निम्न वर्ग के होने के कारण उत्पादन हेतु जिम्मेदार थे । उत्तर वैदिक साहित्य में क्षत्र तथा ब्रह्म, वरुण, और मित्र का पारस्परिक संघर्ष अधिशेष उत्पादन पर नियंत्रण करने के लिए हुआ ।[3] मुद्रा का अभी तक कोई परिज्ञान नहीं हुआ था । राजा को बलि, भाग, शुल्क इत्यादि वस्तुओं के रूप में प्रदान किया जाता था । ब्राह्मण ग्रन्थ में उत्पादक वर्गों के भक्षक के रूप विशमत्ता में राजा को माना गया है ।[4] क्षत्रिय वर्ग द्वारा किसानों पर आदेश चलाने का भी संकेत शतपथ ब्राह्मण में मिलता है ।[5]

---

1. बृहदारण्यक उपनिषद 3/6, 8
2. तैत्ति० सं० 6/1/6/5 ; मैत्रायणी सं० 3/7/3 । 3. के० एम० श्रीमाली, प्रा० भा० इति० पृ० 133
4. ऐतरेय ब्राह्मण 8/17
5. जोगीराज बसु, इंडिया आफ दि एज आफ द ब्राह्मणाज 1939 पृ० 115-116.

वैश्यों को उत्पादन के अपने नियमित कर्तव्य के अलावा सैनिक सेवाओं को भी करना पड़ता था ।

तैत्तिरीय संहिता[1] में उल्लिखित है कि वैश्य समुदाय पशु पालन एवं अन्नोत्पत्ति करते हैं । वैश्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उत्तर वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है । शतपथ ब्राह्मण में क्षत्रिय को ब्राह्मण से श्रेष्ठ और स्थान पर ब्राह्मण को क्षत्रिय से श्रेष्ठ कहा गया है ।[2] विश्य (वैश्य) शब्द सबसे पहले वाजसनेयि संहिता में मिलता है । इसे "अन्यस्य बलिकृत " कहा गया है । वैश्य वर्ण में रथकार, बढ़ई, लौहकार, स्वर्णकार आदि आते थे ।

उत्तर वैदिक काल में शूद्र शब्द का प्रयोग कई बार किया गया है । शूद्र-समुदाय में अनेक वर्ण हो गये थे, जैसे - उग्र, मागध वैदेहव आयोगव, निषाद, पौल्कस एवं चांडाल आदि । विविध व्यवसाय के कारण अनेक जातियों का उद्भव हो गया । अथर्ववेद में रथकार का वर्णन मिलता है ।[3] सूत का उल्लेख इसी प्रकार प्राप्त होता है ।[4] शतपथ ब्राह्मण में सूत को राजकृत कहा गया है।[5] जिसके आधार पर समाज में सूत का महत्व ज्ञात होता है । तैत्तिरीय संहिता में संग्रहीत (कोषाध्यक्ष),

---

1. तैत्तिरीय संहिता 7/1/1/7
2. ध्रुवव्रतो वै राजा - एष च श्रोत्रियश्च तौहवै मनुष्येषु धृतव्रतौ
   — शतपथ ब्राह्मण, 5/4/5
3. अथर्ववेद 3/5/6
4. अथर्ववेद 2/6/7
5. शतपथ ब्राह्मण 13/2/2/18

तक्षन् (बढ़ई), कुम्भकार, कुलाल , कर्मार , धन्वकृत, यवीन, इषुकृत, मृगयु, पुंजिष्ट इत्यादि व्यवसायों का वर्णन है ।

सूत्र काल के साहित्य के अनुसार समाज में ब्राह्मण कृषक थे । एक स्थान पर गौतम का कथन है कि ब्राह्मण क्षौम,द्रवपदार्थों, रंग, धुले वस्त्रों, पकवान, सुगन्धित पदार्थों, फल-फूल , दूध, माँस, औषधियों, जल, यव, पशुओं, भेड़, बकरियों, बैलों, घोड़ों तथा मनुष्यों का विक्रय नहीं कर सकता।[1] इस निषेधात्मक नियम से स्पष्ट हो जाता है कि वैश्यों की भाँति ब्राह्मण व्यापार कर्म भी करते थे । आपस्तम्ब एवं बौधायन द्वारा ब्राह्मणों हेतु अनेक विक्रेय एवं अविक्रेय वस्तुएं बतायी गयी है।[2] इन ब्राह्मणों को अनादर की दृष्टि से देखा जाता था । वैश्यों का प्रधान कर्म पशु पालन, वाणिज्य, कृषि एवं कुसीद ही था ।[3] रथकारों का व्यावसायिक वर्ग कालान्तर में जाति के रूप में संगठित हो गया ।

पाणिनि कृत अष्टाध्यायी में क्षत्रिय [4] राजन्य [5] एवं अर्य[6] (वैश्य के लिए) शब्द प्रयुक्त हैं । शूद्र समुदाय दो कोटि में विभक्त था । (1) अनिर्वसित (2)निर्वसित[7]

---

1. गौतम 7/8/15
2. आपस्तम्ब 1/72/0/12-13 बौधायन 2/1/81-82
3. गौतम 10/1/3
4. अष्टाध्यायी पाणिनि 4/1/168
5. अष्टाध्यायी पाणिनि 5/3/114
6. अष्टाध्यायी पाणिनि 1,1,103
7. अष्टाध्यायी पाणिनि 2/4/10

ब्रह्मचारी के लिए वर्णी का उल्लेख है ।[1] गृहस्थ के लिए गृहपति[2] का प्रयोग हुआ है । नारी जीवन पर अष्टाध्यायी विशिष्ट प्रकाश डालती है । स्वेच्छा से पति वरण करने वाली कन्या को पतिंवरा[3] कहा गया है । कतिपय विदुषी नारियाँ पुरुषों की भाँति अध्यापन कार्य भी करती थीं । समाज पितृ प्रधान था । माता का स्थान पिता के स्थान से उच्च था । पिता का ज्येष्ठ पुत्र उसके बाद में उत्तराधिकारी होता था । ब्राह्मणों को व्यवसाय एवं व्यापार की अनुमति प्रदान की गयी थी ।

महाकाव्य काल में समाज का प्रत्येक वर्ग अनेक ऐसे कर्म कर रहा था जो उसके वर्ण के प्रतिकूल था । ब्राह्मणों को वैश्य कर्म करने की स्वतन्त्रता दे दी गयी । महाभारत में कृषि कर्म एवं पशुपालन द्वारा जीविकोपार्जन करते हुए ब्राह्मणों का उल्लेख है ।[4] वे व्यापार, व्यवसाय भी करते थे ।[5] महाभारत के अनुसार समाज के जिस वर्ग ने अध्ययन यजनादि कर्मों का परित्याग कर कृषि कर्म और गोपालन का अनुसरण किया , वह वैश्य हो गया ।[6] वैश्य वर्ग कई श्रेणियों में विभक्त हो गया ।

---

1. अष्टाध्यायी पाणिनि 5/2/134
2. अष्टाध्यायी पाणिनि 4/4/90
3. अष्टाध्यायी पाणिनि 3/2/46
4. अष्टाध्यायी पाणिनि 4/1/49
5. महाभारत 13/33/12-14
6. महाभारत उद्योग पर्व 38/5; शान्ति पर्व 78/4-6

प्रमुख श्रेणियों की संख्या 18 के लगभग था । प्रत्येक श्रेणी में प्रमुख ज्येष्ठक, श्रेष्ठन, महाश्रेष्ठक, अन्तश्रेष्ठक, आदि थे । वैश्य वर्ण भी राजनीतिक क्षेत्र में शक्तिशाली हो रहा था । एक वर्ग के बीच कई वर्ग बनते जा रहे थे ।

समाज में वर्ण व्यवस्था सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित थी । ब्राह्मण - वर्ण क्षत्रिय कर्मों का अनुसरण कर रहा था । कृपाचार्य, अश्वत्थामा एवं द्रोणाचार्य ब्राहमण होते हुए भी शस्त्र लेकर कौरव पक्ष के साथ युद्ध में सम्मिलित थे । महाभारत के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण वैश्य कर्म का अवलम्ब लेकर जीवन- निर्वाह कर सकता था । ब्राहमणों की भाँति क्षत्रियों को भी अध्यापन का अधिकार था। परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोण शस्त्र ग्रहण करने के बाद भी आजीवन ब्राहमण थे । क्षत्रिय वर्ग भी पूर्णतः जन्मज था । वैश्यों के गोरक्षा, कृषि एवं वाणिज्य स्वाभाविक कर्म थे । व्यापारी वर्ग होने के बाद भी लोहा, माँस, चमड़ा एवं मदिरा का क्रय विक्रय वैश्य वर्ग को वर्जित था ।

महाभारत से ज्ञात होता है कि सदाचारी शूद्रों का आदर प्रारम्भ हो गया था । काव्य, मतंग, एवं विदुर जन्मना शूद्र होते हुए भी कर्म के आधार पर ब्राहमणों की भाँति सम्माननीय थे । राजसूय - यज्ञ में युधिष्ठिर ने उन्हें भी आमंत्रित किया था। अब वे पशु कर्म, वाणिज्य एवं उद्योग धन्धों का अनुसरण कर सकते थे । समाज में वर्ण संकरता भी थी । महाभारत में चार आश्रमों की परिकल्पना की गयी थी।[1] प्रत्येक आश्रम 25 वर्ष का था । ब्रह्मचर्य आश्रम व्यक्ति के जीवन में व्यक्तित्व विकास

---

1. महाभारत 2/242/15216 ; 12/242/48

के लिए महत्वपूर्ण होता था । शिक्षा- दीक्षा, अनुशासन एवं ब्रह्मचर्य का समय था । गुरू के प्रति उसकी श्रद्धा, भक्ति एवं आज्ञाकारिता अतोगथी[1] गृहस्थाश्रम विवाहित जीवन का काल था । रामायण में इस चारों आश्रमों में प्रमुख कहा गया है।[2] महाभारत में भी यही कथन वर्णित है ।[3]

गृहस्थ जीवन के सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट किया जाता था । यह जीवन साधनामय होता था । आयु के अन्तिम चरण में सन्यास आश्रम था । महाकाव्य काल के अन्तिम चरण में बाल-विवाह आरम्भ हो चुके थे । राजवंशों में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी । आरम्भ में तो नारियों की स्थिति अच्छी थी परन्तु बाद में अवनति की ओर उन्मुख हो गयी । गाय का स्थान पवित्र माना जाता था ।

स्त्री शिक्षा के विषय में रामायण का अभिमत है कि कौशल्या एवं तारा दोनों ही मन्त्र विद थी ।[4] रामायण में अत्रेयी वेदान्त अध्ययन करती हुई वर्णित की गयी हैं । महाभारत के अनुसार सुलभा आजीवन वेदान्त का अध्ययन करती है । द्रौपदी "पण्डिता " भी कही गयी है । सीता ने घर पर ही अपने माता पिता से शिक्षा प्राप्त की थी ।[5] अर्जुन द्वारा उत्तरा को उसके ही गृह पर संगीत नृत्य शिक्षा प्रदान की गयी थी । महाभारत में अम्बा एवं शैखावत्य

---

1. महाभारत 12/242/16-30
2. रामायण, अयोध्याकाण्ड 106/22
3. महाभारत शान्तिपर्व - 12/12
4. रामायण 2/20/75 ; किष्किन्धा काण्ड 16/12
5. रामायण 2/27/10

को तह नीाक्षा का वर्णन मिलता है ।

इन दोनों महाकाव्यों में विवाह समाज के लिए अनिवार्य कहा गया है । महाभारत के अनुसार गृहिणी हो गृह है ।[1] इस समय सजातीय विवाहों का विशेष प्रतिष्ठा थी । महाकाव्यों में साधारणत: पर्दा प्रथा का उल्लेख नहीं है । माता के रूप में वह भूमि से भी अधिक गुरु थी ।[2]

नवीन उत्पादन प्रणाली के साथ वर्ण व्यवस्था का भी व्यापक प्रसार दिखायी देता है । इस उत्पादन प्रणाली में सम्मिलित वर्ग के लोग क्रमश: अपने अस्तित्व एवं क्षमता के अनुरूप किसी भी वर्ण के सदस्य के रूप में सामाजिक स्थान प्राप्त करने लगे । नवीन उत्पादन प्रणाली द्वारा जनसंख्या की अभिवृद्धि होने लगी। वर्ण के आधार पर सामाजिक विभाजन की प्रक्रिया गतिशील होती गयी ।

जैन धर्म में निर्वाण का द्वार सभी जाति तथा वर्गों के लिए खुला था । ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों को अधिक प्रतिष्ठा पर बल दिये जाने का जैन ग्रन्थों में वर्णन है । जन्म से निर्धारित वर्ण प्रथा को अस्वीकार कर कर्म ही जाति एवं वर्ण का आधार माना गया । परन्तु शीघ्र ही जैन धर्म द्वारा वैदिक गृह्य संस्कारों एवं अन्य सामाजिक सिद्धान्तों में समन्वय की स्थापना की गयी ।

बौद्ध ग्रन्थों में जन्म पर आधारित जाति प्रथा का घोर विरोध किया गया है । बौद्ध धर्म की सामाजिक परिकल्पना वर्ण व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त नहीं थी । क्षत्रियों का सामाजिक प्रतिष्ठा ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक बताई

---

1. महाभारत, शान्तिपर्व 144/66

2. माता गुरुतरा भूमे: - महाभारत 4/313/70

गया है । क्षत्रियों को मानव में श्रेष्ठ कहा गया है ।[1] दीघ निकाय में अम्बट्ठसुत्त में क्षत्रियों को प्रशंसा वर्णित है । तत्कालीन परिवर्तित समाज में क्षत्रिय एवं ब्राह्मण वैदिक परम्परागत कर्मों से गिर रहे थे और प्रत्येक व्यवसाय का कार्य कर रहे थे । एक बौद्ध ग्रन्थ में कहा गया है कि ब्राहमण जन्म से नहीं होता , ब्राह्मण वह है जिसका मन ऊँचा है, हृदय पवित्र है, चरित्र शुद्ध है, आत्मा में संयम और धर्म है।[2] दीघ निकाय और निदान कथा में कहा गया है कि क्षत्रियों का पद ब्राह्मण से उच्च है।[3] बौद्ध साहित्य में ब्राहमणों के अधिकारों की उपेक्षा का वर्णन प्राप्त होता है ।

इस समय स्त्रियों को स्वतन्त्रता सीमित थी । स्त्रियों के साथ आदर का भाव रखा जाता था । उन्हें अन्य शिक्षा के साथ नृत्य संगीत की शिक्षा भी जाती थी । कुछ भिक्षुणियाँ एवं नारियाँ पाण्डित्य, ज्ञान एवं तर्क शास्त्र के लिए प्रख्यात थीं । उदुम्बरा, जयन्ती, सुभद्रा, अनोपमा, अमरा, भद्राकुण्डकेशा, सुमेधा, जातक, खेमा, सुमा आदि प्रमुख थीं । अवदान शतक एवं अशोकावदान में पर्दा प्रथा के प्रचलन का साक्ष्य नहीं प्राप्त होता । कुछ स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ समारोहों में भी जाती थीं जहाँ वे सभी से भेंट करती थीं।[4]

---

1. संयुक्त निकाय 1/8/11 ; 45
2. मिलिन्द पन्हो 4/5/25 - 26
3. दीघनिकाय 3/1/24 निदान कथा 1/49

शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुलों में की जाती थी । विद्यार्थियों को अपराध करने पर शारीरिक दण्ड दिया जाता था ।[1] वाराणसी,तक्षशिला एवं अन्य शिक्षा केन्द्र थे । तक्षशिला में धनुर्विद्या, चिकित्सा शास्त्र, आखेट, शल्य शास्त्र एवं पशु चिकित्सा की शिक्षा का व्यवस्था थी ।

मौर्य कालीन सामाजिक जीवन के विषय में मेगास्थनीज का यात्रा विवरण एवं कौटिल्य का अर्थशास्त्र विशिष्ट महत्व पूर्ण है । धर्मशास्त्रों के अनुसार कौटिल्य द्वारा चतुर्वर्णो का व्यवसाय निर्धारण हुआ । अर्थशास्त्र में एक और सामाजिक परिवर्तन का संकेत प्राप्त होता है जिसमें शूद्र को आर्य कहा गया है । समाज में ब्राहमणों की प्रधानता के विरुद्ध विरोध नहीं हो पाया । कौटिल्य द्वारा अनेक वर्ण संकर जातियों का वर्णन भी किया गया है । इनकी उत्पत्ति विविध वर्णो के प्रतिलोम एवं अनुलोम विवाहों के फलस्वरूप हुई ।

मेगास्थनीजने भी भारतीय सामाजिक जीवन के विषय में उल्लेख किया है । उसके अनुसार कोई व्यक्ति अपनी जाति के अलावा दूसरी जाति से विवाह नहीं कर सकता था । उसने भारतीय समाज को सात जातियों में विभाजित किया है :- §1§ सैनिक §2§ शिल्पी §3§ निरीक्षक §4§ दार्शनिक §5§ अहीर §6§ सभासद §7§ किसान आदि । अशोक के पाँचवे शिलालेख

---

1. जातक - 2/278

में तत्कालीन समाज के वर्णों का उल्लेख है । समाज में बहुविवाह प्रचलित थे । स्त्रियों की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं था । अशोक के अभिलेखों में अन्ध विश्वासों का भी वर्णन है । कौटिल्य द्वारा नारियों के लिए उच्च शिक्षा का निषेध बताया गया है । कुछ स्त्रियों द्वारा सैनिक शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है । मेगास्थनीज द्वारा दिये गये सामाजिक चित्रण में वर्ण, जाति एवं व्यवसाय का अन्तर भुला दिया गया है । स्त्रियों को पुर्नविवाह की अनुमति थी । सम्भ्रान्त घर की नारियाँ प्राय: घर में ही रहती थी । कौटिल्य ने ऐसी नारियों को अनिष्कासिनी नाम दिया है । अर्थशास्त्र तथा अशोक के अभिलेखों में राजघराने के अन्त:पुर का वर्णन प्राप्त होता है ।

समाज में सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहार पर विशेष बल दिये जाने के कारण देश का सामाजिक जीवन सुखी एवं समृद्ध हो रहा था । रोमिला थापर के अनुसार मौर्यों की राजसभा में सेल्यूकस के दूत मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में दास नहीं थे, परन्तु भारतीय स्रोत इसका खण्डन करते हैं । समृद्ध परिवारों में गृह- दासों की प्रथा आम थी, और यह दास निम्न वर्ण के होते थे किन्तु अस्पृश्य नहीं । खानों और व्यावसायिक श्रेणियों द्वारा भी दास श्रमिकों का उपयोग किया जाता था । अर्थशास्त्र में कहा गया है कि कोई आदमी या तो जन्म से या स्वेच्छया अपने आपको बेचकर अथवा युद्ध में बंदी बन जाने पर या न्यायालय से दण्ड प्राप्त करके दास हो सकता है । दास प्रथा को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी ।स्वामी तथा दास की वैधानिक दृष्टि से मुक्त हो पाती थी , अपितु बच्चा भी स्वामी के पुत्र की वैधानिक स्थिति प्राप्त कर लेता था । सम्भवत: मेगस्थनीज 'वर्णस्थिति

और आर्थिक स्तर विन्यास के भेद को ठीक तरह नहीं समझ पाया था । आर्थिक दृष्टि से, उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर दास प्रथा नहीं थी । भारत में कोई दास अपनी स्वतन्त्रता का पुन: क्रय कर सकता था अथवा अपने स्वामी द्वारा स्वेच्छा से मुक्त किया जा सकता था ।[1]

वैश्यों तथा सामाजिक दृष्टि से उच्चस्थ वर्णो के मध्य संघर्ष अनिवार्य था । अशोक ने सामाजिक ऐक्य पर जो अत्यधिक बल दिया है, उससे सामाजिक तनावों के अस्तित्व का संकेत मिलता है । सामाजिक संहिता में श्रेणिपतियों को वह सम्मान नहीं था जिसका वे स्वयं को अधिकारी समझते थे । अपने आक्रोश को आंशिक अभिव्यक्ति देने के लिए उन्होंने निराश्वरवादी सम्प्रदायों, विशेष रूप से बौद्ध मत का समर्थन किया । फलत: धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध मत एवं ब्राह्मणों में वैमनस्य बढ़ता गया ।

वैदिक काल में मुनि- श्रमण ब्राह्मण प्रधान वैदिक समाज के बहिर्भूत होते हुए भी एक प्राचीन और उदात्त आध्यात्मिक परम्परा के उन्मूलित अवशेष थे ।[2] डा0 पाण्डेय वैदिक काल के अन्त में ब्राह्मण तथा मुनि श्रमणों के परस्पर विरोधी समन्वित दोनों विचारधाराओं को बौद्ध धर्म की उत्पत्ति का कारण स्वीकार करते हैं । परिवर्तित समाज के परिवेश में मुनि श्रमणों के महत्व में अभिवृद्धि हुई एवं वे नवीन क्रान्ति के जन्मदाता बने । छठी सदी पूर्व में हुई क्रान्ति ने असमानता, स्थिरता का प्रबल किया । समाज को समान मान बिन्दुओं पर गणित करने का प्रयत्न किया भारतीय समाज सदैव विभिन्न सांस्कृतिक स्तर के अनुसार धार्मिक आस्था से सम्पृक्त रहा है ।

शुंग कालीन सामाजिक जीवन वर्णाश्रम व्यवस्था पर अवलम्बित था । शुंगकाल में ब्राह्मण वर्ण, धर्म एवं संस्कृति की पुर्नस्थापना हो रही थी । जाति प्रथा की जटिलता बढ़ रही थी । बौद्ध धर्म का निवृत्ति मार्ग ब्राह्मणों की दृष्टि में देश के लिए उपयुक्त न था । अल्पायु बालकों ने प्रव्रज्या ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था । गृहस्थ के लोग आश्रितों की जीविका के बिना प्रबन्ध किये ही संसार त्याग करने लगे । संघ के भिक्षु भिक्षुणी राजदण्ड से मुक्त होने के कारण ऋणी, अभियुक्त एवं हत्या करने वाले होने के बावजूद भी बच जाते थे । भिक्षुजीवन में आलस्य का प्रभाव था । अतः बौद्ध धर्म की श्रमण वृत्ति का विरोध शुंगकाल में हुआ । शुंगकाल के पंतजलि का भी अभिमत है कि ब्राह्मण विचारधारा और श्रमण विचारधारा में शाश्वत विरोध है ।

मनुस्मृति में सन्यास तथा वानप्रस्थ आश्रम के समक्ष गृहस्थ आश्रम को सर्वोपरि माना गया है । महाभारत में भी श्रमण विचारधारा विरोध दिखाई देता है । भीम,युधिष्ठिर से कहते हैं [1] कि मौन धारण करके, केवल अपनी उदर पूर्ति करके, धर्म का ढोंग रचकर मनुष्य अधःपतित हो होता है । वर्ण एवं आश्रम की मर्यादा पुर्नस्थापित की गयी । शूद्रों को सम्पत्ति रखने का अधिकार था ।[2]

ब्राह्मणं वर्ण को अन्य की अपेक्षा सर्वोपरि माना गया । मनु का कथन है कि वेदविद ब्राह्मण सेनापतित्व, राजदण्ड,और एकाधिपत्य का अधिकारी होता

है । वर्णाश्रम धर्म के आधार पर समाज की नयी व्यवस्था की गयी । भरहुत एवं साँची के शिल्पों में तत्कालीन जनजीवन के जीवन्त चित्रण द्वारा शुंग कालीन सामाजिक जीवन का उल्लेख प्राप्त होता है । आश्वलायन श्रौत सूत्र में शुंग आचार्य रूप में वर्णित किये गये है ।[1] शुंग कालीन शिलालेखों में वैश्य व्यापारियों द्वारा धार्मिक कार्यों लिए दान दिये जाने का उल्लेख है । अतः उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने का प्रमाण मिलता है ।

अपने जातिगत व्यवसाय का अनुसरण करने के लिए कहा गया है । मनुस्मृति के अनुसार जिस देश में वर्ण संकरता हो जाती है उसका शीघ्र पतन सम्भाव रहता है।[2] इस काल में शूद्रों के अधिकार अत्यन्त सीमित थे । अपराध करने पर उन्हें अन्य जाति से कठोर दण्ड दिया जाता था ।

समाज में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे दैव, प्रजापत्य, गान्धर्व, ब्राहम, पैशाच्य, असुर, राक्षस एवं आर्ष । बाल विवाह की परम्परा का आरम्भ हो गया था । कन्याओं की विवाह की आयु घटा दी गयी थी, जिससे उनकी शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था ।

प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आयामों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । राजनीतिकआधार के पूर्ण ज्ञान के बिना सांस्कृतिक आधेय अपूर्ण ही रहता है । साहित्य के द्वारा भी राजनीतिक जीवन की झलक मिलती है। वैदिक साहित्य में राज्य एवं राजा के उद्भव के विषय में उल्लेख मिलता है । ऐतरेय ब्राहमण में राजतन्त्र की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है - " देवों,और असुरों का युद्ध हो रहा था। ... असुरों ने देवों को पराजित किया । ... देवों ने कहा," असुर इसीलिए विजयी हुए हैं कि हमारा कोई राजा न था । हमें एक राजा चुनना चाहिए ।" सभी देवगण उससे सहमत हो गये । तैत्तिरीय ब्राहमण में भी उल्लिखित है कि सभी देवताओं ने इन्द्र को राजा बनाने का निश्चय किया क्योंकि वह सर्वाधिक सबल और प्रतिभाशाली देवता था ।[1]

प्राचीन काल में भारत का राजाधिकार मानवीय आवश्यकताओं और सैनिक मांगों पर आश्रित माना गया था तथा राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य युद्ध में प्रजा का नेतृत्व करना था । कुछ समय बाद तैत्तरेय उपनिषद में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि असफल देवताओं ने इन्द्र का निर्वाचन करके देव प्रजापति का यज्ञ किया जिसने अपने पुत्र इन्द्र को उनका राजा बनने के निमित्त भेजा ।[2] वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि राजा की दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त क्रमोत्तर सबल होता जा रहा था । अथर्ववेद [3] में एक स्थल पर विश द्वारा राजा के निर्वाचन का वर्णन है । अथर्ववेद में परीक्षित को मनुष्यों में देव कहा गया है।[4] ब्राहमण काल में

---

1. तैत्तिरीय ब्राहमण 2/2/7/2
2. बाशम ए०एल० अद्भुत भारत पृष्ठ - 65
3. अथर्ववेद 3/4/2

यज्ञों का महत्व बढ़ रहा था । जन मानस में यह धारणा व्याप्त हो रही थी कि अश्वमेध एवं वाजपेय यज्ञों के सम्पादन से राजा देवता के समान हो जाता है।[1] अथर्ववेद के अनुसार " अधार्मिक राजा के राज्य में वर्षा कहीं नहीं होती ।[2] समय के बीतने के साथ - साथ समाज में वंशानुगत राजाओं की परम्परा आरम्भ हो गया । प्राचीन भारत में राज्याभिषेक का राजनीतिक धार्मिक एवं वैधानिक महत्व माना जाता था । राजसूय यज्ञ द्वारा राजा की दैवी शक्ति सुदृढ़ होती थी । वाजपेय एवं अश्वमेध राजा के राज्य का समृद्धि एवं उपज के सरं क्षण में सहायक थी ।

अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रजापति की दो पुत्रियां सभा एवं समिति थीं ।[3] सभा ग्राम संस्था थी । राजा और राष्ट्र की दृष्टि से रत्नियों का विशेष महत्व था । उपनिषद काल के बाद समिति पूर्णरूप से समाप्त होती दिखाईदेती है ।

महाभारत के अनुसार जो राजा धर्म समन्वित हो,उसी को राजा समझना चाहिए ।[4] राजा मन,वचन,कर्म से धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करता था । महाकाव्य काल तक आते - आते राजा के निर्वाचन में व्यावहारिक रूप में कोईविशेष सहयोग नहीं था ।

---

1. शतपथ ब्राह्मण 12/4/4/3 ; तैत्तिरीय ब्राह्मण 18/10×10
2. अथर्ववेद 5/19/15
3. अथर्ववेद 7/12/1
4. महाभारत शान्तिपर्व 90/14

बुद्ध के आविर्भाव के समय भारत में कोई सर्वोच्च सत्ता नहीं थी । भारत कईराज्यों में विभक्त था । राजा और शासक सर्वोच्च शक्ति प्राप्त करने के लिए निरन्तर युद्ध कर रहे थे । गणतन्त्रीय एवं राजतन्त्रीय दोनों प्रकार के राज्य थे ।

वी०एस० अग्रवाल के अनुसार लगभग एक सहस्र ई०पूर्व से पाँच सौ ई०पू० तक के युग को भारतीय इतिहास में जनपद या महाजन-पद युग कहा जा सकता है । समस्त देश मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक जनपदों का ताँता फैल गया था । एक प्रकार से राजनैतिक,सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन की इकाई बन गये थे । प्रारम्भ में जनपद में एक वर्ग विशेष के लोग ही निवास करते थे । परन्तु बाद में अन्य वर्गों , जातियों के लोग जनपदों में रहने लगे ।

राजनीतिक एकीकरण के जिस कार्य को हर्यकवंशी नरेशों ने प्रारम्भ किया था उसे मौर्यों ने पूर्ण किया उनके समय में भारत का अधिकांश भाग राजनीतिक सूत्र में आवद्ध हो गया ।

ई०पू० छठी शदी में लोहे के प्रचुर प्रयोग के कारण महा जनपदों की स्थापना में सरलता हुई । नवीन कृषि यन्त्रों द्वारा कृषक आवश्यकता से अधिक अन्नोत्पादन करने लगे । इस अधिक उत्पादन का संग्रह राजा प्रशासकीय आवश्यक-ताओं के लिए करवा सकता था । लोगों की आस्था अपनेकबीलेके प्रति नहीं बल्कि उस जनपद (जिसमें बसे थे) के प्रति बढ़ती गयी । बिम्बसार ने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा भी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ किया । कोशल देवी के साथ काशी ग्राम से एक लाख की आय प्राप्त होती थी ।

3. आर्थिक व्यवस्था

प्राचीन काल में मानव जीवन के आर्थिक विकास का मूल आधार कृषि, पशुपालन, व्यापार एवं व्यवसाय रहा है। आर्थिक जीवन की ये उत्प्रेरक प्रवृत्तियां[1] प्रत्येक युग में सहज रूप से स्वभावत: उद्भूत होती रही हैं, जो समाज पुष्ट और स्वस्थ बनाने में सक्रिय सहयोग करती रही हैं। समाज में धनी एवं निर्धन वर्ग ऊंच- और नीच के रूप में पल्लवित हुए। बृहस्पति तथा कौटिल्य जैसे भारतीय शास्त्रकारों ने मनुष्य के जीवन में अर्थ की आवश्यकता और महत्ता मानते हुए अर्थ को जगत का मूल माना है।[2]

नारद[3] एवं याज्ञवल्क्य[4] द्वारा धर्मशास्त्र के व्यवहार में अर्थ (शास्त्र) की उपादेयता मानी गयी। " सर्वेगुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति " का महत्व प्रत्येक काल में रहा है।

पूर्व वैदिक काल में मुख्य रूप से जनमानस पशु पालन पर ही आधारित था। यायावर जीवन में उसके लिए पशुपालन अधिक था, जिससे उनकी दस्युओं से रक्षा भी हो जाती थी। ऋग्वेद के अनुसार यायावर जीवन को स्थायी जीवन में परिवर्तित करने का प्रयास बार- बार किया गया। वैदिक काल में अभिजात एवं सामान्य वर्ग की झलक मिलती है। कालान्तर में ब्राह्मण तथा राजन्य की गणना अभिजात वर्ग में की गयी, साथ ही व्यवसाय, कृषि, पशुपालन कार्य करने को सामान्य वर्ग माना गया।

---

1. मार्शल, प्रिंसिपुल्स, आव इकनामिक्स, । पृष्ठ 556-70
2. बृहस्पति सूत्र 6-7-12 ; अर्थशास्त्र 1/70/10-11
3. शतपथ ब्राह्मण 1/6/2/3 ; 1/6/1/3

उत्तर वैदिक काल में तकनोकी विकास क्रम में लौह का विशेष स्थान था । श्याम अयस् या कृष्ण अयस् शब्द का वर्णन वैदिक साहित्य, में प्राप्त होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि लौह - तकनोक का प्रयोग आरम्भ में युद्धास्त्रों के लिए और फिर धोरे- धोरे कृषि एवं अन्य आर्थिक गतिविधिया में होने लगा ।[1] लोगों के आर्थिक जोवन के स्थायित्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रारम्भ हुए । कृषि का व्यापक प्रसार हुआ, उत्तर वैदिक काल में कृषि लोगों का प्रमुख व्यवसाय रहा। ब्राह्मण ग्रन्थों में जुताई से सम्बन्धित साक्ष्यों का विवरण मिलता है, जिसके अन्तर्गत, बीज बोने, कटाई करने तथा गहराई से जुताई करने का वर्णन है ।[2] 4 से लेकर 24 बैलों वाले हल के उपयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है । फाल हड्डियों के समान कठोर खदिर एवं कत्थे द्वारा निर्मित होते थे । साहित्य में " प्रवीरवन्त " या " पवीरं " धातु कीचोंच वाले फाल, का भो वर्णन किया गया है । अन्तरन्जी-खेड़ा से गेहूं,चावल, तथा जौ के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं । हस्तिनापुर से जंगलोकोटि के गन्ने एवं चावल के साक्ष्य भो मिले हैं । अथर्ववेद में शण (सन) का उल्लेख किया गया है ।[3]

इस समय विविध प्रकार के शिल्पों का भो उद्भव हुआ । ब्राह्मण ग्रन्थों में श्रेष्ठी का उल्लेख किया गया है। पाणिनि ने " सुवर्णकार " के कार्यों का उल्लेख

---

1. आर०एस० शर्मा, क्लास फॉर्मेशन एण्ड इट्स मैटोरियल बेसिस इन दि अपर गंजेटिक बेसिन (ई०पू० लगभग 1000-500), अगस्त 1975 में सैन फ्रांसिस्को में 14वीं इंटरनेशनल कांग्रेस आफ हिस्टारिकल साइंसेज में प्रस्तुत लेख, जो इंडियन हिस्टारिकल रिव्यू, खंड 2 अंक 1, जुलाई 1975 में पृष्ठ- 1-13 में प्रकाशित ।

किया है।[1] लोहे के कार्य करने वाले को कर्मार कहा जाता था । अष्टाध्यायी में वस्त्र के लिए चीवर, आच्छादन प्रभृति शब्दों का प्रयोग किया गया । इस समय मृण्पात्र कुलाल द्वारा निर्मित किये जाते थे ।[2] " तक्षन् " शब्द का प्रयोग बढ़ई के लिए किया गया है । व्यापारियों के लिए " वणिक" एवं"वाणिज्य" शब्द आया है । वाजसनेयी संहिता एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में वाणिज्य शब्द प्राप्त होता है । तैत्तिरीय संहिता में कर्घे के लिए " वेमन " शब्द प्रयुक्त किया गया है । उत्तर वैदिक काल में श्रेष्ठि के साथ ही " गणपति " तथा "गण " शब्द का भी प्राप्त होते हैं । ये व्यावसायिक संगठन थे । विविध व्यवसायों के लिए विविध संघ निर्मित किये गये थे । " निष्क " का उल्लेख अष्टाध्यायी प्राप्त होता है। क्रय करने के अर्थ में किया गया है । प्रारम्भ में"निष्क " एक आभूषण था, बाद में मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होने लगा । रजत एवं ताम्र की मुद्रा माष[3] " कहलाती थी । अष्टाध्यायी[4] में " कार्षापण " का भी उल्लेख प्राप्त होता है । " शतमान " से भी वस्तुओं का क्रय किया जाता था ।[5]

सूत्र काल में गृह उद्योगों का पर्याप्त विकास होने लगा । वस्त्र-व्यवसाय पर विशेष ध्यान दिया गया । रेशम के कीड़ों को पालकर रेशम प्राप्त किया जाने

---

1. पाणिनि 8/3/102 ; 5/2/64
2. पाणिनि 4/3/118
3. पाणिनि 5/1/30; 5/1/20
4. पाणिनि 6/1/34
5. पाणिनि 5/1/27

लगा था । इस समय स्वर्ण रजत, लौह, ताम्र, पीतल एवं सीसे जैसी धातुओं का व्यापक प्रयोग होने लगा । सूत्रकालीन ग्रन्थों में नावों एवं नदियों का वर्णन प्राप्त होता है ।

महाकाव्य काल में"वार्ता" का विशेष उल्लेख मिलता है । वार्ता के अन्तर्गत वाणिज्य, पशुपालन एवं कृषि को महत्वपूर्ण स्थान माना गया । रामायण[1] में उल्लेख आया है कि भरत से चित्रकूट में मिलने पर राम ने वार्ता में संलग्न कृषि-गोरक्षा जीवी जन समुदाय की कुशलता भी पूंछी थी ।[2] महाभारत [3] में भी वार्ता को लोक मूल माना गया है । इस समय हंसिया, कुदाल एवं सूप का उल्लेख भी प्राप्त होता है । [4] कृषि कर्म में बैलों का प्रयोग होता था ।[5] समाज में पशु विशेषज्ञ लोग भी थे, जो पशुओं के गुण, स्वभाव ,रोग का ज्ञान रखते थे । सहदेव का नाम पशु विशेषज्ञों में था ।[6] अश्वों के विशेषज्ञ नल थे ।[7] कृषि कराने के लिए आया है । किराये पर श्रमिकों की व्यवस्था हो जाती थी ।

इस काल में वाणिज्य एवं व्यापार से सम्बन्धित नवीन जानकारी प्राप्त होती है । व्यापारियों की सलाह से राजा मूल्य निर्धारण करता तथा आयात, निर्यात करता था । जल मार्ग एवं स्थल मार्ग द्वारा व्यापार कार्य सम्पादित

---

1. रामायण अयोध्याकाण्ड 100/48
2. महाभारत, वनपर्व 67/35
3. रामायण 2/32/29, 2/80/7
4. महाभारत 17/767/46
5. महाभारत 4/10/13-14
6. महाभारत 3/7/18

किया जाता था । वस्तु विनमय का प्रचलन क्रय - विक्रय में था । मनुस्मृति में शिल्पकारों द्वारा निर्मित उपकरणों तथा सामग्रियों का उल्लेख मिलता है ।

रामायण में रावण के राज प्रासाद के स्वर्णमय प्राचीन, रजत वातायनों, मणि मुक्ताओं एवं स्फटिक प्रयोगों को देखकर हनुमान को स्वर्ग की स्मृति हो गयी थी ।[1] वस्त्र एवं आभरण का निर्माण उन्नत ढंग से हो रहा था । अभिजात एवं धनी वर्ग द्वारा रेशमी वस्त्रों का उपयोग होने लगा। रामायण के अनुसार राम और सीता घर पर रेशमी वस्त्र धारण करते थे । " तन्तुवाय " द्वारा सूती वस्त्रों का तथा कम्बल कार द्वारा ऊनी वस्त्रों का व्यवसाय किया जाता था । चर्मकार, मालाकार, वैद्य, रजक कुंभकार, कर्मार (लोहकार) , नापित, खनक, वर्धकि कर्मान्तिक एवं सुराकार आदि अनेक व्यवसाय करने वालों के नाम प्राप्त होते हैं ।

श्रेणियों के अध्यक्ष को " मुख्य " नाम से जाने जाते थे । लंका से वापस आने पर अयोध्या में राम के प्रवेश करने पर श्रेणी मुख्यों द्वारा स्वागत किया गया ।[2] दुर्योधन एवं युधिष्ठिर के समारोहों में " श्रेणि मुख्य " विद्यमान थे । वाह्लीक एवं कम्बोज क्षेत्र रामायण काल में अश्वों के लिए विख्यात थे ।[3] । अपरान्त सागरों द्वारा रत्न प्राप्त किया जाता था । [4] विंध्य क्षेत्र से हाथी प्राप्त किये जाते थे। [5] समुद्र यात्राओं का वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है ।

---

1. रामायण लंकाकाण्ड - 129
2. रामायण बालकाण्ड - 6
3. रामायण अयोध्याकाण्ड - 82
4. महाभारत 3/64/23 - 48

सुवर्णद्वीप तथा यवद्वीप का उल्लेख रामायण में किया गया है ।[1] शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख आया है कि यज्ञ अग्नि के माध्यम से जंगल जलाकर वैदिक लोग आगे बढ़ने में सफल हुए । यह जंगल जलाकर पेड़ों को काटकर भूमि को कृषि योग्य बनाने के प्रयास आरम्भिक कालीन थे। जंगलों को सफाई करने में लोहे की सहायता ली गयी । लोहे के फाल से ही गहरी जुताई सम्भव हुई । कम श्रम द्वारा अधिक उत्पादन किया जाने लगा । उत्तर पूर्व भारत को प्राचीन जीवन पर नवीन उत्पादन प्रणाली का व्यापक प्रभाव पड़ा । वैदिक ग्रन्थों में, उपनिषदों में पशुवध की निन्दा की गयी है । बौद्ध ग्रन्थों में पशुओं को सुख देने वाला (सुखदा)तथा अन्न देने वाला (अन्नदा) कहा गया है ।

कृषि के उत्कर्ष के अतिरिक्त लौह उपकरणों के बढ़ते प्रयोग से अनेक शिल्पों तथा उद्योग धन्धों की प्रगति हुई । पालि ग्रन्थों में गंगा घाटी के अनेक नगरों के विकास का वर्णन हुआ है । शिल्पकारों एवं व्यापारियों के अस्तित्व का ज्ञान भी प्राप्त होता है । इस समय आहत मुद्राओं के प्रचलन से व्यापार में वृद्धि हो रही थी । कौशाम्बी के अनुसार गंगा घाटी में नवीन वर्गों का अस्तित्व निर्विवाद रूप से माना जाता है । चरवाहा वर्ग के स्थान पर कृषकों का स्थान हो गया । सम्पन्न व्यापारी श्रेष्ठी एवं गृहपति अपनी सम्पत्ति के कारण समाज मेंमहत्वपूर्ण स्थान पर थे । बौद्ध साहित्य में धनोपार्जन न करने पर निर्धनता के उद्भव की सम्भावना की मान्यता बन गयी । महात्मा बुद्ध ने उपदेश दिया कि कृषकों को बीज एवं अन्य सुविधाओं को प्रदान करने का ध्यान रखना चाहिए । व्यापारियों

को धन एवं श्रमिक वर्गों को उचित पारिश्रमिक प्रदान करना चाहिए । आर0 एस0शर्मा के मतानुसार बौद्ध धर्म के सिद्धान्त नई आर्थिक व्यवस्था एवं उपज के अधिशेष पर विकसित हो रहे नगरीय जीवन के अनुकूल थे ।

जातक ग्रन्थों के अनुसार सूत कातने का कार्य प्रायः स्त्रियाँ ही करती थीं । बुनकरों को " तन्तुवाय " कहा गया है । चित्रकार,माली,राजगीर,बढ़ई, लोहार, सौदागर आदि श्रेणियों का उल्लेख जातक ग्रन्थों में किया गया है।[1] श्रेणी अध्यक्ष को " प्रमुख " "श्रेष्ठिन " या " ज्येष्ठन " कहा गया है । विनय पिटक के अनुसार इस समय शिवि देश के सूती वस्त्रों को विशेष ख्याति हो गयी थी । वाराणसी में रेशमी तथा गांधार में ऊनी वस्त्रों के उत्पादन का साक्ष्य भी प्राप्त होता है।हाथी दांत के कार्य करने वालों को " हस्तिदन्तकार " कहा गया है। प्रस्तर कार्य करने वालों को " पाषाण - कोट्टक " कहा गया ।

बौद्ध साहित्य में विभिन्न व्यवसायों करने वालों का उल्लेख प्राप्त होता है,उदाहरणार्थ - नाविक नापित,रजक, शिकारी, गायक,पुरोहित, ज्योतिषी, लेखक,नट, सूद, वैद्य आदि । व्यवसाय को परिवार की पैतृक सम्पत्ति के रूप में माना जाने लगा । " नेगमागम " व्यापारिक केन्द्र के रूप में थे । व्यापारियों के नेता को " सार्थवाह " कहा गया है । उद्योग,व्यवसाय एवं व्यापार में साझेदारी प्रथा प्रचलित थी ।

" महाश्रेष्ठिन " सर्वोपरि प्रधान या अध्यक्ष और अनुश्रेष्ठिन उपाध्यक्ष होते थे । ई0पू0 छठी शताब्दी का समय अर्थनीति का काल माना जाता है ।

---

1. जातक 1/368,386,320, 231

मौर्यकाल तक विभिन्न शिल्पों एवं व्यवसायों का उत्कर्ष हो गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से विविध व्यवसायों का साक्ष्य प्राप्त होता है। खानों के खनन तथा उसमें से प्राप्त अनुक धातुओं की चर्चा भी की गयी है। खानों से प्रमुख रूप में ताम्र, स्वर्ण रजत एवं हीरे प्राप्त होते थे। खान कार्यों का प्रधान कार्याधिकारी, आकराध्यक्ष नाम से जाना जाता था। उसके प्रधान कार्य का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है।[1] राजा से छिपाकर कोई भी व्यक्ति खनिज पदार्थों की चोरी नहीं कर सकता था।

मेगास्थनीज के अनुसार अस्त्र-शस्त्र बनाने वाला वर्ग कर से मुक्त था।[2] समुद्र से सीप, मोती भी निकालकर आभूषण कार्यों में प्रयुक्त होता था। सुवर्णकार को विशिखा (निर्धारित कक्ष) में कार्य करने के लिए क्षेपणादि शिल्प कार्यों में दक्ष एवं विश्वासपात्र लोगों के नियुक्ति की बात कही गयी है।[3]

कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के निर्मित वस्त्रों में क्षौम (रेशमी वस्त्र), दुकूल (पतले रेशमी वस्त्र), कंकर सूती वस्त्र एवं क्रिमितान का उल्लेख किया है।[4] सूत्राध्यक्ष प्रवीण लोगों द्वारा रस्सी, कवच एवं सूत का निर्माण कराता था। सम्भवत: अनाथ स्त्रियाँ सेमर की रूई, कपास, सन, क्षौम के सूत कातकर अपनी जीविकोपार्जन करती थीं। धोबी (रजक) द्वारा चिकने प्रस्तर एवं काष्ठ तख्तों पर वस्त्र धोने का उल्लेख मिलता है। काष्ठ शिल्पी नौका, जहाज एवं घरेलू वस्तुओं का निर्माण करते थे।

मौर्य काल मे शिल्पों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया । मेगास्थनीज ने शिल्पियों को चौथी जाति के रूप में उल्लिखित किया है । उसने जहाज बनाने वालों कवच तथा आयुध निर्माण करने वालों का भी उल्लेख किया है । शिल्पी श्रेणियों में संगठित होते थे । अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि काशी एवं पुण्ड्र में रेशमी वस्त्र बनाये जाते थे । कौटिल्य द्वारा चीनपट्ट का उल्लेख किया गया है ।

पटना के पास किये गये उत्खनन से प्राप्त काष्ठ- प्लेट फार्म शिल्प की उन्नत अवस्था का परिचायक माना जाता है । शिल्पी विविध अध्यक्षों के निरीक्षण में कार्य करते रहते थे । अर्थशास्त्र में कलिंग,मालवा,वंग,काशी के सूती वस्त्रों की ख्याति का उल्लेख आया है ।

हाथीदांत का कार्य करने वाले, मृण्पात्र बनाने वाले, चर्मकार पशुओं की खाल से जूते बनाने वाले उद्योगों का भी प्राधान्य था । प्रजा के हित के लिए व्यापारियों एवं शिल्पियों पर सरकार का नियंत्रण था ।

भारतीय इतिहास में नगरीय जीवन का विकास बौद्ध काल से प्रारम्भ हुआ, जिसके विकास में मौर्य काल के शिल्पियों तथा व्यापारियों ने विशेष सहयोग किया । मध्य गंगा घाटी में विविध शिल्प- विधाओं , व्यापारों और शहरी करण के साक्ष्यों द्वारा एक सुदृढ़ ग्रामीण आधार को स्पष्ट करने में सरलता होती है । अर्थशास्त्र , जातक ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि इस काल में स्वर्ण रजत, एवं ताम्र मुद्राओं का प्रचलन था । कौटिल्य ने " सौवर्णिक" एवं "लक्षणाध्यक्ष" नाम के मुद्रा अधिकारियों का वर्णन किया है । सामान्य रूप से क्रय एवं विक्रय हेतु

वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रचलन माना जाता है । माषक, पण, सुवर्ण, काकणी एवं कार्षापण नाम की मुद्राओं का उल्लेख किया गया है । श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए राज्य से मान्यता प्राप्त संघों की व्यवस्था की गयी थी ।

नगरों के विस्तार के साथ ही साथ श्रेणियों में संगठित शिल्पियों की संख्या में वृद्धि हुई । व्यापारी वर्ग में जैन धर्म का भी प्रचार हुआ । अहिंसा पर विशेष बल देने के कारण किसानों ने जैन धर्म का पालन नहीं किया । दूसरे अन्य प्राणियों का जीवन संकट में डालने वाले शिल्पों कोभी नहीं स्वीकारा । वाणिज्य क्षेत्र के लोग ही जैन मतानुयायी बनते गये । जैन धर्म में मितव्ययिता का महत्व था, जो व्यावसायिक वर्ग के लिए उपयुक्त था ।

उत्तर भारत की अर्थव्यवस्था तृतीय शताब्दी ई०पू० तक कृषि प्रधान हो चली थी । कृषियेत्तर आर्थिक गति विधियों से लोग परिचित थे । पशुपालन किया जाता था, जिस पर कर भी लगता था । सरकारी देख-रेख में तटीय भूमि पर व्यावसायिक उद्यम किया जाता था । मौर्य काल में कृषकों की संख्या अधिक थी । कलिंग से विस्थापित लोगों को नवीन बस्तियां बसाने के कार्य एवं बंजर क्षेत्र की सफाई करने के लिए लगाया गया था । सिंचाई की व्यवस्था भी इस काल में थी । विविध शिल्पों के छोटे स्तर के उद्योग का स्वरूप धारण किया । राज्य द्वारा कतिपय शिल्पियों को अपनी सेवा में ले लिया गया ।

4· धर्म की मुख्य एवं लौकिक परम्परायें

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में जहाँ एक ओर सामाजिक आर्थिक जीवन के साथ-साथ कला का महत्वपूर्ण स्थान है, वहीं दूसरी ओर धर्म का अद्वितीय निदर्शन प्राप्त होता है वैदिक धर्म में सर्वप्रथम (द्यौस) आकाश एवं पृथ्वी की उपासना मंत्रो द्वारा प्राप्त होती है, इन दोनों का मानवीकरण किया गया। गायत्री मंत्र द्वारा सविता की स्तुति की गयी है।[1] विष्णु को विश्व का संरक्षक माना गया।[2] विष्णु उपासकों की अर्चना सुनकर सहायता के लिए आ जाते हैं।[3] ऋग्वेद में विष्णु के तीन पदों का उल्लेख किया गया है, जिनके द्वारा वे समस्त ब्रह्मांड में अभिक्रमण करते हैं।[4]

ऋग्वेद में अग्नि देवता की स्तुति में लगभग दो सौ मंत्र दिये गये हैं। अग्नि सूर्य के समान ज्योति से युक्त वर्णित है। ऋग्वेद में अग्नि की भौतिक उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है।[5] अग्नि को वन्धु, वान्धव, पिता, मित्र, भी कहा गया है। ऋग्वैदिक देवताओं में इन्द्र का भी महत्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि वह सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न देवता माना जाता था, जो वर्षा, आँधी, तुफान एवं विद्युत का देवता था। इन्द्र अन्तरिक्ष आकाश एवं पृथ्वी से भी बड़ा माना गया।[6] वह पृथ्वी, जल, आकाश और पर्वत सभी का राजा था।[7] ऋग्वेद में विवृत है कि

1· ऋग्वेद 3/62/10
2· ऋग्वेद 1/155/4; 2/1
3· ऋग्वेद 6/49/13; 6/69/5
4· ऋग्वेद 1/22/18; 7/59/1-2
5· ऋग्वेद 10/87/1-3; 16 और 19
6· ऋग्वेद 3/46/3
7· ऋग्वेद 11/89/10

वह अपनी इच्छा से कोई रूप धारण कर सकता था।[1] ऋग्वेद के अनुसार [2] इन्द्र के प्रति की गयी स्तुति घृत अथवा मधु की अपेक्षा अधिक मधुर होती है । इन्द्र की स्तुती में लगभग दो सौ पचास ऋचायें प्राप्त होती हैं । इनके अलावा परजन्य, यम, मरुत्, वात, अश्विन, पूषन, रुद्र आदि भी हैं । ऋग्वेद में प्रभुता के लिए इन्द्र एवं वरुण की पारस्परिक होड़ का उल्लेख प्राप्त होता है ।

ऋग्वेद में स्तुति विधि में प्रत्येक देव के लिए भिन्न - भिन्न ऋचायें प्रयुक्त की जाती थी । कालान्तर में हव्यों द्वारा यज्ञ करने की प्रथा बढ़ने लगी । अब यजन अग्नि घी, दूध, धान्य आहुति देकर की जाती थी । वैदिक धर्म के आरम्भिक चरण में बहुदेववाद का प्रचलन दिखायी दे ता है । इन देवताओं में प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण रूप प्रतिष्ठित किया गया । इस समय इन्द्र को युद्ध देवता के रूप में देखा गया ऋग्वेद में कुछ वृहत एवं व्ययात्मक यज्ञों का भी उल्लेख प्राप्त होता है । सोम यज्ञ की गणना इसी कोटि में की जाती है ।

ऋग्वैदिक देव कुल में अनेक देवताओं को स्थान प्राप्त था । जहाँ सभी देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक रूप में वर्णित किया गया । अग्नि, मरुत, द्यौस, सूर्य, वायु, तथा यहाँ तक की मित्र वरुण इन्द्र, रुद्र, एवं विष्णु को

---

1. ऋग्वेद 3/48/4
2. ऋग्वेद 2/2/4/20 ;-6/15/47

भी प्राकृतिक शक्तियों से सम्बन्धित माना गया । काश्यप, माण्डूक्य, शिशु, अज, मत्स्य, कौशिक , गोतम, प्रभृति, जाति एवं व्यक्तियों के नामों द्वारा गण चिन्हात्मक (टोटम सम्बन्धित) विश्वासों के विषय में जानकारी मिलती है । अथर्ववेद में इसी प्रकार के विभिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं ।[1]

ऋग्वेद के परवर्ती कालीन मण्डलों में एकेश्वरवाद का चिन्ह दिखायी देता है । विभिन्न देवताओं को क्रमशः सर्वोपरि स्थान प्रदान किया गया । इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि जैसे युगल देवताओं को अभिव्यक्तियां प्राप्त हुईं ।[2] प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के अनुसार उत्तर काल में इन्द्र वर्षा के देव के रूप में पूजित हुए और लोकप्रिय बने रहे ।[3]

उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मणों का स्थान विशिष्ट होता गया । वेद के शब्दों में एवं शब्दांशों की व्याख्या का महत्व बढ़ता चला गया । वेदों में प्रयुक्त छन्दों को देवताओं के समान महत्व दिया जाने लगा । बहुदेववाद की इतनी अधिक प्रतिष्ठा बढ़ गयी कि समाज में नक्षत्रों एवं ऋतुओं को देवताओं के रूप में स्वीकार कर लिया गया । इस उच्चवर्गीय धर्म के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन धर्मग्रन्थों

---

1. जे०आर० जोशी, " सम माइनर, डिवाइनिटीज इन वैदिक माइथोलॉजी एण्ड रिचुअल", 1977 ; चन्द्रा चक्रवर्ती, कामन लाइफ इन दी ऋग्वेद एण्ड अथर्ववेद - ऐन एकाउण्ट आफ दी फोक लोर इन दी वैदिक पीरियड 1977 तथा एन०जे० शेंडे, दि रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ अथर्ववेद 1952 ।
2. एकं सत विप्राः बहुधा वदन्ति।
   - ऋग्वेद 1/164/146

में प्रचलित उपासना पद्धतियों का सम्बन्ध पवित्र चैत्यो से था जो भूआत्माओं (यक्षों) सर्वात्माओं (नागों) तथा अन्य लघु देवताओं से सम्बन्धित था। इनका तत्कालीन धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था।

उत्तर वैदिक कालीन धार्मिक आस्थाएं एवं गतिविधियां भौतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित थीं। इस समय एक ओर तो ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित एवं पोषित यज्ञ के अनुष्ठान तथा कर्मकाण्ड की व्यवस्था चल रही थी, तो दूसरी ओर और इसके विरुद्ध उपनिषदों के अस्तित्व की बात उठायी जा रही थी। यज्ञादि का एक स्वतन्त्र परिवेश में विकास इसी युग में आरम्भ हुआ। राजसूय, वाजपेय एवं अश्वमेध आदि के व्यापक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनका प्रमुख लक्ष्य कृषि उत्पादन में वृद्धि करना था। राजसूय एवं अश्वमेध तथाकथित राजनीतिक शक्ति के द्योतक माने जाते हैं। वाजपेय खाद्य एवं पान से सम्बन्धित माना जाता है।

वाजसनेयी संहिता[1] एवं वृहदारण्यक उपनिषद[2] से भूमि की प्रजनन एवं उर्वर शक्ति की प्रतीकात्मकता ज्ञात होती है। राजसूय यज्ञ में पूरे वर्ष के अनुष्ठानों का समापन इन्द्रशुनासीर की अध्यक्षता में यज्ञ द्वारा सम्पादित होता था। इन्द्रशुनासीर का अभिप्राय हलयुक्त इन्द्र से होता है। इस यज्ञ का परम उद्देश्य पस्त प्रजनन शक्ति को पुन: जागृत करना था।[3] राजा के सिंहासनारोहण से संबंधित रहने के कारण राजसूय यज्ञ मात्र एक बार होना चाहिए था, परन्तु वह तो पूरे वर्ष चलता था।

यज्ञ के अनुष्ठानों से पुरोहितों की शक्ति बढ़ रही थी। यज्ञ-अनुष्ठान के द्वारा आनुषंगिक लाभ भी दृष्टिगोचर हुए। यज्ञ मण्डप में विभिन्न वस्तुओं के

---

1. वाजसनेयी संहिता 23/22-31
2. वृहदारण्यक उपनिषद 6/4/3

निर्धारण के लिए अपेक्षित विशद गणना में प्रारम्भिक गणित का ज्ञान परमावश्यक माना गया । पशु बलियों के द्वारा पशु शरीर रचना के ज्ञान बढ़ने के साथ ही रोग विज्ञान या शरीर विज्ञान को अपेक्षा शरीर रचना का ज्ञान विशिष्ट कोटि का रहा । उत्तरी पालिश वाले मृद्भाण्डीय संस्कृति एवं चित्रित धूसर संस्कृति के अधिकांश स्थलों से कर्मकाण्डीय कुण्डों का कोई विशेष प्रमाण नहीं मिला है ।

अतरंजीखेड़ा से कुछ वृत्ताकार अग्निकुण्ड अवश्य प्राप्त हुए हैं, जो सम्भवतः इसी उद्देश्य के लिए थे ।[1] कौशाम्बी उत्खनन [2] से पुरुषमेध के सन्दर्भ में एक यज्ञ वेदी के प्राप्त होने का उल्लेख प्रो० जी०आर० शर्मा द्वारा किया गया है । पंचविंश ब्राह्मण एवं अथर्ववेद में उल्लिखित है कि मगध के व्रात्य मुखिया को वैदिक समाज में प्रवेश देने के लिए विशाल कर्मकाण्ड के आयोजित किये गये हैं । निषादों के प्रमुख को इसी प्रकार वैदिक अनुष्ठानों में स्थान दिया गया । कर्मकाण्डों द्वारा वृहत्तर समुदाय के संगठन में सहयोग प्राप्त हुआ ।

पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार आत्मा सुख या दुख की अधिकारी होती है । कर्म का सिद्धान्त इसी पर आधारित है । उच्च या निम्न जाति में जन्म भी पूर्व जन्म के कर्मों पर आधारित माना गया , जिससे मानव मन में यह आशा उत्पन्न हुई कि अगले जन्म में उसकी सामाजिक स्थिति में सुधार होगा । कर्म के सिद्धान्त में धर्म की व्यापक संकल्पना में एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया । "सृष्टि सूक्त "

में व्यक्त की गयी जिज्ञासा एवं संदेह उस व्यापक भावना की द्योतक थी जो उस समय विद्यमान थी । इससे प्रभावित होकर कुछ लोग संन्यासी हो गए, जिनका उद्देश्य या तो शारीरिक संयम और ध्यान के द्वारा रहस्यमय तथा चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त करना या फिर समाज से भौतिक सम्बन्ध विच्छेद करके समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने के झंझट से मुक्ति पाना रहा होगा । सन्यासियों के कुछ समूहों द्वारा वैदिक आचारों की अस्वीकृति और परम्परायुक्त जीवन पद्धति, से ऐसा स्पष्ट होता है ।[1]

सन्यास को पलायन वाद को भी संज्ञा देना सर्वथा अनुचित है । कुछ सन्यासी कतिपय मौलिक प्रश्नों के उत्तर के लिए प्रयत्नशील थे । आत्मा के अस्तित्व सृष्टि के निर्माण एवं परमात्मा तथा जीवात्मा के सम्बन्ध पर व्यापक चिन्तन किया गया । अथर्ववेद की सूक्तियों में संतान, सम्पत्ति, आयु और प्रभुता के लिए कामना की गयी है ।[2] यजुर्वेद में तो स्तुतियां भौतिक सुख की प्राप्ति के विषय से सम्बन्धित हैं ।

अथर्ववेद में ऐसे मंत्र का उल्लेख किया गया है, जिससे भूत-प्रेत से रक्षा के साथ- साथ जादू टोने द्वारा अनेक प्राप्तियां की जा सकती हों । इससे स्पष्ट है कि प्रेतात्माओं में आस्था प्रारम्भ होने लगी थी । नाग, गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराओं की गणना देवमण्डल में की जाने लगी ।

प्रतीकवाद पर विशेष बल दिया जाने लगा । विश्व की स्थिरता के लिए निरन्तर यज्ञ की आवश्यकता मानी गयी । उत्तर वैदिक काल की धार्मिक स्थिति में उपनिषदीय अद्वैत सिद्धान्त का विशेष महत्व था । अष्टाध्यायी में सोम, सूर्य, वरूण, अग्नि, रूद्र, वायु, इन्द्र, प्रभृति ऋग्वैदिक देवताओं का उल्लेख मिलता है। इस समय तक यज्ञ पूजा, गन्धर्व पूजा, राक्षस पूजा, सूर्यपूजा, की भी प्रतिष्ठा समाज में प्रतिष्ठित हो चुकी थी । पाणिनि ने सुपरि, शैवल एवं विशाल का वर्णन किया है जो यक्षदेवता लगते हैं ।[1] अष्टाध्यायी में धृतराज का नाम भी मिलता है ।[2] सर्पों की माता कद्रू [3] का उल्लेख भी आया है । दिति को दैत्यों की माता अभिहित किया गया है ।[4]

पाणिनि के समय तक बहुदेववाद का व्यापक प्रभाव था । वासुदेव सम्प्रदाय का अभ्युदय हो चुका था । अष्टाध्यायी में धर्म का प्रयोग सदाचार के अर्थ में किया गया है ।[5] शुभ एवं अशुभ दिनों की मान्यताएं भी थी ।[6] छोटी आहुतियों में पारिवारिक जन रहते थे, जबकि बड़ी - बड़ी यज्ञों में सम्पूर्ण ग्राम ही नहीं परन्तु समस्त जन भाग लेते थे । उनकी ऐसी अवधारणा थी कि मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य

---

1. पाणिनि अष्टाध्यायी - 5/3/84
2. पाणिनि अष्टाध्यायी - 6/4/135
3. पाणिनि अष्टाध्यायी - 21/1/72
4. पाणिनि अष्टाध्यायी - 4/1/55
5. पाणिनि अष्टाध्यायी - 4/4/41

रहकर भी देवता उसमें भाग लेते हैं ।

महाकाव्य काल में उत्तर वैदिक यज्ञों की प्रथा का प्राधान्य रहा । रामायण के अनुसार स्वयं राम ने यज्ञ किया था । महाभारत में पाण्डवों एवं कौरवों द्वारा यज्ञ किये जाने के वर्णन हैं । यज्ञों में पशु बलि का धीरे - धीरे प्रभाव कम हो रहा था । यज्ञों के स्थान पर आत्मसंयम और चरित्र शुद्धि पर विशेष बल दिया जा रहा था । इस समय कर्मकाण्ड को प्रधानता थी । इस काल में गणेश, शिव,ब्रह्मा,विष्णु, दुर्गा एवं पार्वती की उपासना की जाती थी । जनसाधारण में इस विचार का प्रादुर्भाव हो रहा था कि धर्म के पतनोन्मुख होने पर दुष्टात्माओं के दमनार्थ भगवान का अवतार होता है । राम एवं कृष्ण को अवतार पुरुष के रूप में महत्व दिया गया । पुर्नजन्मवाद एवं कर्मवाद के सिद्धान्त धीरे - धीरे पल्लवित हो रहा थे । वीर उपासना को परम्परा इस काल की विशिष्ट उपलब्धि मानी जाती है । इस समय पूर्वमीमांसा, सांख्य योग का अभ्युदय हुआ । भक्तिवाद, अवतारवाद एवं कर्मवाद के तथ्यों की दार्शनिक समीक्षा की गयी। धार्मिक जीवन में धीरे - धीरे संकीर्णता का समावेश हो रहा था ।

महाभारत काल का विशेष महत्व इस दृष्टि से भी है कि यह युग अपने दोषों से परिचित हो चुका था । उनके निराकरण के उपायों की खोज में विचारकों का प्रयास चल रहा था । ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैदिक मन्त्रों की महत्ता देववाक्य, के तुल्य मानी जाती थी । उनमें किसी के द्वारा कोई भी परिवर्तन सम्भव नहीं था । ऐसे परिवेश में पुरोहितों का सम्मान स्वतः ही बढ़ने लगा । समाजमेंधन लोलुपता बढ़ने लगी । यज्ञ कर्मकाण्ड वाह्य

आडम्बरों के साथ - साथ जटिलता, नीरसता से प्रभावित हो रहे थे । यज्ञों में की जा रही पुरोहितों को दान में बहुमूल्य दक्षिणा दिये जाने से एवं पशुओं को बलि किये जाने से धन एवं पशु की ही धीरे - धीरे हानि हो रही थी ।

कालान्तर में जैन धर्म द्वारा वेदवाद का समर्थन नहीं किया जा सका । कर्मकाण्ड एवं यज्ञ के लिए भी जैनधर्म मौन था । अहिंसावादी होने के कारण पशु वध वाली यज्ञों का भी विरोध होने लगा ।ब्राह्मण धर्म में वैदिक सरलता के स्थान पर जटिल एवं यांत्रिक प्रभाव बढ़ता गया । उसके साथ ही साथ कर्मकाण्ड की प्रधानता बढ़ रही थी ।

ब्राहमण धर्म के विरूद्ध असन्तोष बढ़ रहा था । उनके समस्त ग्रन्थ वेदों पर ही आधारित थे । वेद को अपौरूषेय, पूर्ण एवं अनादि के रूप में माना जाता था । उन्हें ईश्वर द्वारा दिया गया या ईश्वर के मुख से उद्भूत कहा जाता था।[1] वेदों में गहन आस्था एवं मन्त्र पाठ को उस समय समग्र रूप से पूर्ण नहीं माना गया । उपनिषदों में इससे सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होते हैं । छान्दोग्य उपनिषद में नारद का कथन है कि " भगवन् ! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद को जानता हूं । मैंने इतिहास- पुराण - रूप पंचम वेद को, वेदों के वेद व्याकरण को, श्राद्धकल्प, गति और उत्पाद ज्ञान का भी अध्ययन कर लिया है । विधि शास्त्र नीतिशास्त्र एवं तर्कशास्त्र को मैं जानता हूं । ब्राहम विद्या, देव विद्या, नक्षत्र विद्या, क्षत्र विद्या, एवं भूत विद्या का भी मैंने सम्यक् अध्ययन किया है । किन्तु यह सब जानकर भी, " हे भगवन् ! मैं केवल मन्त्रों को जानने वाला हूं , आत्मा को जानने

महात्मा बुद्ध ने भी दीर्घ निकाय में वेदों के प्रति अन्ध श्रद्धा का विरोध किया है ।[1] समाज का चिन्तनशील वर्ग प्राचीन समय से ही बहुदेव वाद की निस्सारता का पक्षपाती था । उपनिषदकाल में इस मान्यता का व्यापक प्रसार बढ़ा कि जब ब्रहम सर्वत्र व्याप्त है । तब विविध देवों एवं देवियों की पूजा का क्या औचित्य है ?

समाज का एक प्रबुद्ध वर्ग मानव को विविध देवी देवताओं की अधीनता से मुक्ति प्रदान करने में प्रयत्नशील था । वह वर्ग मानव को देवताओं से ऊपर मानने का पक्षपाती था । ब्राहमण साहित्य में सर्वप्रथम इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है कि आत्मोत्कर्ष हेतु देवताओं की अधीनता आवश्यक नहीं है[2]। कर्म द्वारा ही मानव भाग्य का सृजन करता रहता है ।

यज्ञ में भाग लेने वाले एक पुरोहित के स्थान पर सात पुरोहितों की आवश्यकता समझी जाने लगी और फिर उनके स्थान पर 17 पुरोहित (होतृ एवं उसके तीन सहयोगी, उदगातृ तथा तीन सहयोगी, अध्वर्यु एवं उसके तीन सहायक, ब्राहमण तथा तीन सहयोगी एवं ऋत्विज) हो गये । जटिल एवं प्रभूत धन वाले इन पंच यज्ञों में पितृ यज्ञ, देव यज्ञ, मनुष्य यज्ञ, भूत यज्ञ , ब्रहम यज्ञ के साथ ही साथ वैश्वदेव, दर्श पूर्णमास, चातुर्मास्य अग्न्याधेय, पिण्ड पितृ यज्ञ, अग्निष्टोम, वरुण प्रघास, अप्तोर्याम , अतिरात्र अश्वमेध, राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों की व्यापकता

बढ़ती गयी । बौद्ध साहित्य में कण - होम, तुष- होम, घृत- होम, तण्डुल होम, दर्वी होम एवं अग्नि हवन, रुधिर होम, मुख में घी लेकर कुल्ले से होम का वर्णन मिलता है ।[1] विविध यज्ञों में तो पशु हिंसा, आवश्यक कर दी गयी थी ।

छठी श.ाब्दी के आगमन तक विविध जातियों एवं उपजातियों का उद्भव हो गया था । अतः इन नवीन जातियों को शूद्र वर्ग में रखने का प्रयास किया गया । जिससे भारत का एक व्यापक जनसमूह अधिकार से वंचित होता गया । इससे सामाजिक असन्तोष ने वृहद रूप धारण करके धार्मिक क्रान्ति का स्व. देखना प्रारम्भ किया । इन्हीं कारणों के द्वारा विविध मत मतान्तरों का उदेभव होता गया ।

भिक्षु, परिव्राजक एवं भ्रमण करके अपने पंथों का प्रसार कर रहे थे । सारा जनमानस धार्मिक परिवेश से प्रभावित हो गया था ।   राधाकृष्णन् का इस सम्बन्ध में अभिमत है कि - पुरातन तन्तुओं को अपनी बुद्धि एवं आवश्यकता के अनुसार परिगृहीत, सम्बर्धित संशोधित एवं परिपक्व करके नवीन धर्माचार्यों ने अपने अपने मतों का ताना बाना तैयार किया। बुद्ध ने घोषित किया कि वैदिक धर्म हीन किया है । - किसी भी तथ्य को व्यक्तिगत परीक्षण के बाद ही स्वीकार करना अपेक्षित है । परम्परागत प्रमाण के आधार पर नहीं ।

---

1. ब्रहमजाल सुत्त, दीघनिकाय, 1/1

बौद्ध एवं जैन साहित्य में बहुदेववाद का प्रमाण मिलता है । चुल्ल निद्देस नामक बौद्ध ग्रन्थ में देवों को तीन कोटियाँ बतायी गयी हैं - 1 - उपपत्तिदेवा, 2- सम्मुतिदेवा 3- विसुद्धि देवा । वाणमन्तर, वैमानिक, भवन वासी एवं ज्योतिषी आदि देवों का उल्लेख जैन वाङ्मय में प्राप्त होता है ।

ब्राहमण ग्रन्थों, उपनिषदों एवं वेदों में नाग (सर्प) उपासना का सुस्पष्ट साक्ष्य नहीं प्राप्त होता है । किन्तु छठी शताब्दी तक इनकी उपासना महत्वपूर्ण हो चुकी थी । नायाधम्म कहा में नागोत्सव का उल्लेख है ।[1] एक जातक में नाग-माता का कथन है कि जल प्रकृति मेरी सन्तान है ।[2] बौद्ध जातकों में उल्लेख है - कि नाग भूगर्भ में निवास करते थे; वहाँ पर उनके बड़े - बड़े प्रासाद थे ।[3] सुपण्ण (सुपर्ण) का उल्लेख भी बौद्ध साहित्य द्वारा ही प्राप्त होता है ।[4] सुपण्ण (सुपर्ण) के नाम से प्रसिद्ध यह देवता नागों के शत्रु गरूड़ के रूप में पूजित था । इसे औप पातिक सूत्र में भवनवासी देवताओं की कोटि में रखा गया है ।[5]

जैन औपपातिक सूत्र में बम्भा (ब्रहमा) का वर्णन प्राप्त होता है । जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में वरूण, सोम एवं वायु देवताओं का उल्लेख भी किया गया है ।

---

1. नाया धम्मकहा 8/95
2. जातक 6/160
3. जातक 6/167, जातक 6/269-70 गा0 1164/71
4. जातक 3/91 गा0 1058
5. औपपातिक सूत्र 32-37

धार्मिक जीवन में रूद्द ﴾ रूद्र ﴿ की उपासना भी महत्वपूर्ण थी ।[1] इसके एक अन्य नाम शिव की भी ख्याति थी ।[2] जैन ग्रन्थ निशोथ चूर्णि में खंदमह ﴾ स्कन्द उत्सव ﴿ का उल्लेख है ।[3] बलदेव , उपासना का उल्लेख भी आवश्यक निर्युक्ति में प्राप्त होता है ।[4] महाभारत में कृष्ण के भाई बलदेव का नाम लांगुलिन भी प्राप्त होता है ।

देवताओं में इन्द्र का स्थान भी महत्वपूर्ण है । इन्द्र को मघवा तथा सक्क भी कहा गया है । जातक ग्रन्थ में उसे तावतिंत नामक स्वर्ग के तैंतीस देवताओं का राजा कहा गया है । [5] वह मसक्कसार नामक प्रासाद में निवास करता है ।[6] कल्पसूत्र के अनुसार इन्द्र अनेक देवताओं, आठ रानियों, तीन सभाओं, स प्त सेनाओं, उनके सप्त सेनापतियों एवं बहुसंख्यक अंगरक्षकों से आवृत रहता है ।[7] जैन एवं बौद्ध वाड.मय में यक्ष उपासना का भी वर्णन मिलता है । यक्षों के राजा वेस्सवन ﴾वैश्रवण ﴿ का उल्लेख जातक ग्रंथों में हैं । [8] यक्षों का शरीर लम्बा- चौड़ा होता

1· निशीथ-चूर्णि 19/236
2· आवश्यक निर्युक्ति 509
3· निशोथ चूर्णित 18/1174
4· आवश्यक निर्युक्ति 481
5· जातक - 1/202
6· जातक 5/209 गा0 1255
7· कल्पसूत्र 1/13
8· जातक 1/228

था , वे अपलक देखते थे तथा प्राय: क्रूर एवं मांसाहारी भी होते थे ।[1]

जैन साहित्य में परोपकारी तथा उदार यक्षों का वर्णन आया है । समिल्ल नामक नगर में एक बार चेचक के प्रकोप के हो जाने पर वहाँ के पीड़ित निवासियों ने मणि भद्र नामक यक्ष की पूजा की । मणि भद्र यक्ष ने द्रवीभूत होकरचेचक के प्रभाव को शान्त किया ।[2] पुत्र - प्राप्ति की कामना से भी नारियाँ यक्ष- उपासना करती थीं । [3] पिशाच प्राय: श्मशानों में रहते थे, वे माँसाहारी होते थे ।[4] समाज में प्रतिष्ठित भूतों को मुदित करने के लिए प्राय: वलि दी जाती थी ।[5] जातक ग्रन्थों भूतों के वर्ग में राक्षस, दानव पिशाच का नामोल्लेख है । उत्तराध्ययन टीका में विज्जाहरों (विद्याधरों) का वर्णन है ।[6] देवताओं द्वारा वृक्ष पर निवास करने की मान्यता थी ।[7]

चार लोकपालों का उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है । सर्वप्रथम वेस्सवन उत्तर दिशा का स्वामी था, विरूपक्ख पश्चिमी दिशा का अधिपति था। धतरट्ठ पूर्वी दिशा का स्वामी था, विरूल्ह दक्षिण दिशा का स्वामी था । देवताओं के साथ - साथ देवियों की भी उपासना होती थी । शक्क (इन्द्र)

---

1. जातक 6/207 जातक 4/49।
2. पिण्ड निर्युक्ति 145
3. नायाधम्माकहा 2/49, आवश्यक चूर्णि 2/192
4. नायाधम्मकहा 8/99
5. आवश्यक चूर्णि 2/162
6. उत्तराध्ययन टीका 9/137
7. जातक 4/152

के 4 पुत्रियाँ थीं आसा, सद्धा, सिरी और हिरी । इन सभी में प्रमुख श्री देवी थी । देवी चण्डिया ॥ दुर्गा ॥ को प्रसन्न करने के लिए हिंसात्मक यज्ञ किये जाते थे ।[1] गंगा[2] एवं मणिमेखला[3]॥ समुद्र देवी ॥ का भी उल्लेख मिलता है । नाया-धम्मकहा में जन्त्र मन्त्र का उल्लेख है । अन्ध विश्वास में भी आस्था थी। भूत, विद्या , दिव्य माया एवं मंत्र द्वारा अपने दुःखों से मुक्ति पाने का प्रयास किया जाता था ।[4] कुछ विद्वानों द्वारा छठी शताब्दी ई० पू० को क्रान्ति के विषय में अन्य मत प्राप्त होता है ।[5]

अशोक के नवें शिलालेख द्वारा लोगों के मांगलिक कार्यो का उल्लेख प्राप्त होता है । ये मांगलिक कार्य विवाह, पुत्रोत्पत्ति, तथा यात्रा अवसर एवं बीमारी के समय सम्पादित किये जाते थे । स्थानीय तथा कुल देवताओं के मन्दिरों में देवताओं की उपासना पूजा, पुष्प तथा सुगंधित पदार्थो द्वारा की जाती थी । निगलीवा स्तम्भ लेख में बुद्ध से पूर्व के वोधिसत्वों की उपासना का उल्लेख प्राप्त होता है । कनकै मुक्ति के स्तूप को अशोक ने द्विगुणित कराया था । उस समय देश में धार्मिक सहिष्णुता थी । मौर्य काल में आजीवक सम्प्रदाय प्रमुख था ।[6] इसके सन्यासी

---

1. आचारांग चूर्णि 6।
2. जातक 2/422
3. जातक 6/35
4. जातक 1/120,122, जातक 2/59
5. ग्राउण्ड वर्क्स आफ एन्शिएंट इंडियन हिस्ट्री - जे०एस० नेगी
6. ए०एल०वाशम - दि आजिविकाज ।

नग्नावस्था में जीवनयापन करते थे । मौर्य सम्राट अशोक ने बाराबर की गुफाएं दान में दी थी ।[1] अशोक के सप्तम् शिलालेख में ब्राह्मण, संघ, निर्ग्रन्थ, आजीवक के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है ।[2] कौटिल्यने शिव, वैश्रवण, वैजयंत अश्विनि, अपराजित, अप्रतिहत का नाम दिया है । मेगास्थनीज ने कृष्ण एवं शिव का नाम दिया है । पाणिनि ने वासुदेव का उल्लेख किया है । पंतजलि के महाभाष्य से स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होता है कि देवताओं की मूर्तियों का विक्रय किया जाता । इन्हें मूर्ति बनाने वाले शिल्पियों का देवता कारू कहा गया है । इस समय बौद्ध धर्म की दो प्रमुख शाखाएं स्थविर वादी एवं महासन्घिक थीं ।

बौद्ध धर्म अशोक द्वारा राजाश्रय के अनन्तर मौर्य काल के मध्य से प्रमुख धर्म बन गया ।[3] अशोक के धम्मपर बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव था ।[4] बौद्ध धर्म की तृतीय महासंगी का आयोजन अशोक के समय में ही किया गया था । जैन धर्म का इस समय जीवन संचार चल रहा था । वृद्धावस्था तक वैष्णव रहने वाले चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन धर्म अन्तिम समय में स्वीकार-कर लिया ।

---

1. गुहा लेख - 3
2. रीड डेविडस बुद्धिस्ट इंडिया पृ0 143
   दा एज आफ इम्पीरियल यूनिटी पृष्ठ 450
3. स्तम्भ अभिलेख - 7
4. लघु शिला अभिलेख - 2 , स्तम्भ लेख - 2

5. साहित्य में यक्ष एवं नाग

भारत का प्राचीन साहित्य विभिन्न विषयों से परिपूर्ण है, तथापि उसमें धार्मिक साहित्य की प्रमुखता है। वैदिक साहित्य अत्यन्त व्यापक है। धर्म के क्षेत्र में गवेषणा के लिए कृत संकल्प मनीषी को समग्र साहित्य का अध्ययन करना ही पड़ता है। विविध साहित्यों में लोक-धर्म से सम्बन्धित वांड़्मय प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है जिसमें यक्ष एवं नाग का उल्लेख व्यापक रूप में किया गया है। 'यक्ष' शब्द सर्वप्रथम 'जैमिनीय ब्राह्मण' (III, 203, 272) में प्राप्त होता है,[1] जहां पर इसका अर्थ "एक आश्चर्यजनक वस्तु" माना गया है। 'यक्ष' गृह्य सूत्र के पूर्वकाल में नहीं प्राप्त होता है। गृह्य सूत्र में यक्षों को नाना प्रकार के देवताओं के साथ अभिमन्त्रित किया गया है।

यक्ष संस्कृत शब्द है जो पालि में "यक्ख" तथा प्राकृत में जक्ख या जक्खिनी है। यक्ष शब्द की व्युत्तपति कीथ महोदय यज् धातु से मानते हैं अत: यक्ष का तात्पर्य हुआ "यजन करने के योग्य जो हो वही यक्ष है।" ए0के0 कुमार स्वामी यक्ष शब्द की व्याख्या में यक्ष का अर्थ - गटकने वाला बताते हैं। भोजन के अर्थ के लिए भक्ष् धातु तो मिलती है, परन्तु यह नहीं प्राप्त होता है। वी0एस0 अग्रवाल यक्ष को एक ऐसे महापादक की तरह मानते हैं, जिसकी विपुल शाखाओं पर विविध देवताओं का आवास हो।

ऋग्वेद में कहा गया है कि "हे अग्नि देव हमारी जो भी हिंसा करने का प्रयास करे, उसकी यज्ञोपासना में तुम कभी मत जाओ। उसके किसी पड़ोस में रहने वाले दुष्ट आत्मा की यज्ञोपासना में जाने से भी इन्कार कर दो। मेरे अलवा अन्य को सखा न बनाओ।

1- ए0के0 कुमार स्वामी, दि ओरिजिन ऑफ बुद्ध इमेज

यक्षों के विषय में साहित्यिक साक्ष्यों के क्र म में महामयूरी का नाम विशेष उल्लेखनोय है । इस ग्रन्थ की रचना लगभग तृतीय,चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 में हुई थी । इसमें जो सूची प्राप्त होती है, उसमें नान्दी एवं वर्धन का नामोल्लेख है । वर्धन एवं नान्दी में नन्दवर्धन के नगर में अपने - अपने आवास निर्मित कर रखते थे । अवतामसक सूत्र के आधार पर एक चीनी विद्वान का विचार है कि यह नगर मगध में विद्यमान में था । इसका महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि यक्षों की दो मूर्तियां पटना के पास से मिली हैं । एक मूर्ति पर इस प्रकार का लेख है । यक्ख ता वता नाम्दी । गंगोली[1] महोदय के अनुसार ये दोनों प्रतिमाएं नन्दिवर्धन के संरक्षण पूर्ण यक्षों के सम्बन्ध में साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं ।

सांची लेख में पूर्ण भद्र तथा मणिभद्र को भ्राता कहा गया है जिनकी चर्चा अन्यत्र है - उनमें विभोषण ,दुर्योधन, विष्णु, शंकर, कार्तिकेय, सुप्राबुध,ककुछन्द नेग -मेष, अर्जुन, वज्रपाण, मकरध्वज इत्यादि । जैन ग्रन्थों में यक्षों को गन्धर्वो (देवदूत) का संरक्षक मानने की अवधारणा व्यक्त की गयी है । जो पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है । उवासागादासों ग्रन्थ में वर्णित है कि देवोंका ही दूसरा स्वरूप "पिसाया" है एवं ब्राह्मण सनातन पंथी देवताओं की भाँति उनके सन्त एवं उग्र स्वरूपों की तरह ही ये यक्ख हो सकते हैं ।

आटानाटीय वृत्तान्त[1] ग्रन्थ में अच्छे एवं बुरे यक्खों के बारे में उल्लेख प्राप्त होता है । चार महान राजाओं के विद्रोह करने का जिस स्थल पर वर्णन किया गया है, उसमें कुबेर का भी नाम मिलता है । इसमें से यदि किसी में एक ने किसी भिक्षु या साधारण मनुष्य पर आक्रमण किया तो वह ही उच्च यक्ख की प्रार्थना करता है । बुद्ध के लिए उचित प्रार्थना (स्तुति) वैश्रवण स्वयं करते हैं । मुख्य यक्खों की सूची वैश्रवण द्वारा ही प्रदान की जाती है । जिसमें वरूण इन्द्र , प्रजापति, सोम, अलावका, मणि, (भद्र) इत्यादि प्रमुख हैं ।

प्रारम्भिक चार प्रजापति सोम, इन्द्र, वरूण, पुरातन पंथी ब्राह्मण देवताओं में इन्द्र को यक्ख नहीं कहा गया है । कुबेर (वैश्रवण) के अनुसार यहां पर यक्खों को सभी श्रेणियां हैं । अथर्ववेद के अनुसार यक्ष पुरी या ब्रह्म पुरी ज्योतिर्मय स्वर्ण के आभूषणों की आलमारी जुटाने में समर्थ है तथा अमरत्व केन्द्र के रूप में महत्वपूर्ण है । इसमें त्रिभुज सिर के आकार की उच्चता तथा तिहरे आधार बने होने का प्रमाण मिलता है । इस प्रकार की आराधना करने वालों को प्राण (जीवनी शक्ति) के नाश होने का भय नहीं रहता ।[2]

---

1. दीघ निकाय, III 195

2. यो वै ताम् ब्राहमणों वेदामृतेनामवृतम् पुरम् ।
तस्मै ब्रहमा च ब्रहमाश्च चक्षुः प्राणम् प्रजाम् ददुह ।।
न वै ताम् चक्षुर्जहाति न प्राणो जटासः पुरा ।
पुरम् यो ब्राहमणो वेदा यस्याः पुरूषा उच्यते ।।
अष्टाचक्रा नवाद्वारा देवानां पुरायोध्या ।
तस्यां हिरण्यायाः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।
तस्मिन् हिरण्याये कोषेत्र्यारे त्रिपतिष्ठिते ।
तस्मिन् याद यक्षासमातमानवात् तद्वै ब्रहम विदा विदुः ।

अथर्ववेद में देवताओं एवं लोक देवताओं को निम्न सूची प्राप्त होती है।[1]

1. अग्नि
2. वृक्ष (वनस्पति)
3. औषधि
4. पौधे
5. इन्द्र
6. सूर्य
7. मित्र
8. वरुण
9. भग
10. अंश
11. विवस्वन
12. सविता
13. पूषा
14. त्वाष्त
15. गन्धर्व
16. अप्सरा
17. अश्विन

18. वृहमनस्पति

19. अर्यमा

20. अहोरात्र ǁ दिन एवं रात्रि ǁ

21. सूर्य और चन्द्रमा

22. विश्वे आदित्य गण

23. वात

24. पार्जन्य

25. अन्तरिक्ष

26. दिसाह

27. आसाह

28. ऊषा

29. सोम देव

30. पशु ǁ जंगली एवं पालतू ǁ

31. पक्षीगण

32. भव

33. सर्व

34. रूद्र पशुपति

35. नक्षत्र

36. दिवा ǁ स्वर्ग ǁ

37. भूमि

40. समुद्र
41. नदी
42. झील
43. सप्तर्षि
44. अपो- देविह
45. प्रजापति
46. पितृगण
47. यम
48. स्वर्ग देवता
49. मध्य वायु के देवता
50. पृथ्वी सरित
51. आदित्यगण
52. रूद्रगण
53. वासुस
54. दिवि देवाह
55. अथर्व पुत्र
56. अंगिरस पुत्र
57. याजन
58. याजमान

62. होत्रा

63. दारभा

64. आर्या

65. राक्ष

66. सर्प

67. किन्नर

68. मृत्यु

69. ऋतुएं

70. ऋतुपति

71. संवत्सर (वर्ष)

72. मास (माह)

73. हायाना

74. अर्द्ध वर्ष

75. विश्वपत्नी

76. सर्व देव

77. भूत

78. भूतपति

जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण साहित्य में जिन लोक देवताओं का उल्लेख मिलता है उनका नाम इस प्रकार हैं :-

1.	इन्द्रमह	-	इन्द्रमह	(इन्द्र का उत्सव)
2.	खण्डमह	-	स्कन्द मह	(स्कन्द का उत्सव)
3.	रूद्द जत्त	-	रूद्र या त्रा	(रूद्र का उत्सव)
4.	शिव जत्त	-	शिव यात्रा	(शिव का उत्सव)
5.	वेसमन जत्त	-	वैश्रवण यात्रा	(वैश्रवण का उत्सव)
6.	नागजत्त	-	नाग यात्रा	(नाग का उत्सव)
7.	जक्ख जत्त	-	यक्ष यात्रा	(यक्ष का उत्सव)
8.	भूय जत्त	-	भूत यात्रा	(भूत का उत्सव)
9.	नयजत्त	-	नदी यात्रा	(नदी का उत्सव)
10.	तालय जत्त	-	तादगा यात्रा	(तादगा का उत्सव)
11.	रूक्ख जत्त	-	वृक्ष यात्रा	(वृक्ष देवता का उत्सव)
12.	चेय जत्त	-	चैत्य यात्रा	(चैत्य का उत्सव)
13.	पात्वया जत्त	-	पर्वत यात्रा	(पर्वत देवता का उत्सव)
14.	उज्जना जत्त	-	उद्यान यात्रा	(उद्यान देवता का उत्सव)
15.	गिरि जत्त	-	गिरि यात्रा	(पर्वत देवता का उत्सव)

इन नामों के अतिरिक्त अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं। रायापसेनिया सुत्त की सूची में निम्न नाम मिलते हैं :-

1.	इन्दमह	-	(इन्द्र का उत्सव)
2.	खण्ड मह	-	(स्कन्द का उत्सव)

4. मोन्द मह - ३ मुकुन्द का उत्सव ३

5. शिव मह - ३ शिव का उत्सव ३

6. वेस्समन मह - ३ वैश्रवण या कुबेर का उत्सव ३

7. नागमह - ३ नाग का उत्सव ३

8. जक्ख मह - ३ यक्ष का उत्सव ३

9. भूय मह - ३ भूत का उत्सव३

10. थूपामह - ३ स्तूप का उत्सव ३

11. चेयमह - ३ चैत्य का उत्सव ३

12. रुक्ख मह - ३ वृक्ष का उत्सव ३

13. गिरिमह - ३ पर्वत का उत्सव ३ ३

14. दरीमह - ३ पर्वत गुफा का उत्सव ३

15. अगाडामह - ३ अवातामह ३

16. नैमह - ३ नदी मह ३ नदो का उत्सव ३

17. सरमह - ३ सरोवर का उत्सव ३

18. सागह मह - ३ समुद्र का उत्सव ३

इसके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में देवताओं कुछ की सूचियां प्राप्त होती हैं। एक सूची सुत्तनिपात की एक टीका निद्देश में हैं और दूसरी सूची मिलिन्द-पन्होमें प्राप्त होती है । मिलिन्द पन्हो [1] में इन धार्मिक परम्पराओं के गुरुओं

---

1. माला अटोना पभाता धम्यगिरिया ब्रह्मगिरिया ...
पिपिहताम् - मिलिन्द पन्हो वाडेकर संस्करण पृष्ठ 90

§ शिक्षकों § को गण के रूप में वर्णित किया गया है -

1.	प्रभाता		§ पर्वत को मानने वाले §
2.	धम्मगिरिया		§ धर्मगिरिया § धर्मगिर - अनुयायी §
3.	ब्रह्मगिरिया		§ ब्रह्मगिरि के अनुयायी §
4.	पिसाच्चा		§ पिशाच अनुयायी §
5.	मनिभद्द		§ मणिभद्र धार्मिक मतानुयायी §
6.	पुन्नभद्द		§ पूर्ण भद्र धार्मिक मतानुयायी §
7.	छन्दिमा		§ चन्द्र भद्र धार्मिक मतानुयायी §
8.	सूरिया		§ सूर्य भद्र धार्मिक मतानुयायी §
9.	काली देवता		§ काली भद्र धार्मिक मतानुयायी §
10.	शिव	शैव	§ शिव भद्र धार्मिक मतानुयायी §
11.	वासुदेव		§ वासुदेव भद्र धार्मिक मतानुयायी §

निदेशा भाष्य में जो नाम प्राप्त होतें हैं वे उपासकों के नाम हैं,उन्हें वतिका या संस्कृत में वर्तिका कहा जाता है।महानिद्देश की सूची में निम्नांकित नाम प्राप्त होते हैं ।[1]

1.	हाथ्थावतिका	§ हस्ति देवता के उपासक गण §
2.	अस्सवतिका	§ अश्व देवता के उपासक गण §
3.	गोवतिका	§ वृषभ देवता के उपासक §
4.	कुक्कुर वतिका	§ कुत्ते के उपासक §
5.	काका वतिका	§ कौआ के उपासक §

6.	वासुदेव वतिका	﴾ वासुदेव भगवान के उपासक ﴿
7.	वलदेव वतिका	﴾ वलदेव भगवान के उपासक ﴿
8.	पुन्नभद्द वतिका	﴾ पूर्ण भद्र के उपासक ﴿
9.	मणिभद्द वतिका	﴾ मणि भद्र के उपासक ﴿
10.	अग्गि वतिका	﴾ अग्नि देवता के उपासक ﴿
11.	सुपन्न वतिका	﴾ सुपर्ण या पक्षी के उपासक ﴿
12.	यख्ख वतिका	﴾ यक्ष के उपासक ﴿
13.	असुर वतिका	﴾ असुर के उपासक ﴿
14.	गन्धव्व वतिका	﴾ गन्धर्व के उपासक ﴿
15.	महाराजा वतिका	﴾ महाराज देवता उपासक ﴿
16.	चन्दिमा वतिका	﴾ चन्द्रमा उपासक ﴿
17.	सुरियावतिका	﴾सूर्य उपासक ﴿
18.	इन्द वतिका	﴾ इन्द्र उपासक ﴿
19.	ब्रह्म वतिका	﴾ ब्रह्म उपासक ﴿
20.	देव वतिका	﴾ देव के उपासक ﴿
21.	दिशा वतिका	﴾ दिशाओं के उपासक ﴿

भागवद गीता में भी लोक देवताओं का उल्लेख किया गया है ।[1] विभूति के सामान्य नाम के अन्तर्गत इन देवताओं का वर्णन किया गया है । गीता[2] में

---

1. यान्ति देवाव्रता देवान् पितृण पितृन यान्ति पितृव्रत: ।
   भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति माघा जिनोपि माम ।।
   श्रीमद भगवद गीता 9/23

विभूति योग का उल्लेख मिलता है । विभूतियों को सूचो निम्नलिखित रूप में प्राप्त होती है :

1. विष्णु
2. रवि (सूर्य)
3. मारीचि
4. चन्द्र (शशि) चन्द्रमा देवता
5. इन्द्र (वासव)
6. रुद्र
7. वैश्रवण
8. अग्नि (पावक)
9. मेरू (पर्वत देवता)
10. स्कन्द
11. सागर (समुद्र देवता)
12. हिमालय
13. अश्वाषठा वृक्ष (वृक्ष देवता)
14. गन्धर्व
15. उच्चैश्रवा (अश्व देवता)
16. ऐरावत (हाथी देवता)
17. कामधेनु (दैवी गाय)
18. काम

20. नाग (अनंत) नागमह

21. वरूण

22. पितर

23. यम

24. सिंह

25. गरूण (सुदर्ण)

26. वायु

27. मकर

28. गंगा नदी

29. वासुदेव

30. धनंजय अर्जुन

इसके अतिरिक्त पुराणों में भी कई अन्य सूचियां दी गयी हैं । विभिन्न काल में उनका भिन्न - भिन्न स्वरूप रहा है । गीता के विभूत योग अध्याय में भी लोक देवी देवताओं की सूची मिलती है । पुराण सूची [1] के लिए विद्वानों ने सतत् साधना के द्वारा यह सफलता प्राप्त की है । सूची में इस प्रकार नामोल्लेख मिलता है :-

	नाम		सर्वोत्कृष्ट
1.	देवी देवता	-	विष्णु
2.	पर्वत	-	हिमालय
3.	शस्त्र	-	सुदर्शन चक्र
4.	पक्षीगण	-	गरूण

6.	पंचतत्व	-	पृथ्वी
7.	नदियों	-	गंगा
8.	जल से उत्पन्न वस्तु	-	कमल
9.	असुर गण	-	राक्षस का सिर
10.	क्षेत्र	-	कुरू जगंल
11.	तीर्थ	-	पृथूदक
12.	झील	-	मानसरोवर
13.	वन	-	नन्दन
14.	लोक	-	ब्रहम लोक
15.	धर्म विधि	-	सत्य
16.	याजन	-	अश्वमेध
17.	एक प्रिय	-	पुत्र
18.	ऋषिगण	-	अगस्त्य
19.	आगम	-	वेद
20.	पुराण	-	मत्स्य पुराण
21.	स्मृतियाँ	-	मनुस्मृति
22.	तिथियाँ	-	अमावस्या
23.	देवतागण	-	इन्द्र
24.	चमकने वालो में एक	-	सूर्य
25.	नक्षत्र	-	चन्द्रमा

26.	जलकुंड	-	समुद्र
27.	राक्षस	-	सुकेसिन
28.	बन्धन	-	नाग- पाश
29.	अनाज (अन्न)	-	चावल
30.	मनुष्य	-	ब्राह्मण
31.	पशु	-	गाय एवं शेर
32.	पुष्प	-	जाती
33.	नगर	-	कांची पुरम्
34.	नारी	-	रम्भा
35.	चर्तु आश्रम	-	गृहस्थ
36.	नगर	-	कौसास्थली
37.	देश	-	मध्यप्रदेश
38.	फल	-	आम
39.	मुकुल (कली)	-	अशोक
40.	औषधि	-	हारीतिकी
41.	जड़े	-	कंद
42.	रोग	-	अजीर्ण
43.	वस्त्र	-	सूची वस्त्र
44.	सफेद वस्तु	-	दूध
45.	कला	-	अंकगणित

जहाँ एक ओर देवताओं का उल्लेख मिलता है वहां पर लौकिक देवियों का भी पर्याप्त संख्या में नामोल्लेख प्राप्त होता है ।[1]

1. माहेश्वरी
2. ब्राह्मी
3. कौमारी
4. मालिनी
5. सौपर्णी
6. वायाव्या
7. साकरी
8. नैरृति
9. सौरी
10. सौम्या
11. शिवा
12. द्युति
13. चामुण्डा
14. वारुणी
15. वाराही
16. नारसिंही

बी०एस०अग्रवाल , एैन एसियेन्ट फोक कल्टस पृष्ठ 21-27

17. वैस्णवी
18. चालाच्छिखा
19. सतानन्दा
20. भागा नन्दा
21. पिच्छिया
22. भागा मालिनी
23. बाला
24. अति बाला
25. रक्ता
26. सुरभि (गाय)
27. मुख मन्दिका
28. मातृनन्दा
29. सनन्दा
30. विदाली
31. रेवाती
32. सकुनी
33. महारक्ता
34. पिला पिच्छिका
35. जया
36. विजया

38, अपराजिता

39• कालो

40• महाकाली

41• दुति

42• सुभगा

43• दुर्भागा

44• कराली

45• नन्दिनो

46• अदिति

47• दिति

48• मारो

49• मृत्यु

50• कार्नभोतो

51• ग्राम्या

52• उलूकी

53• घटोदरो

54• कपाली

55• वज्रहस्ता

56• पिशाची

57• राक्षसी

60· चन्दा

61· लंगाली

62· कुतभि

63· छेता

64· सुलोचना

65· धूम्रा

66· एकवीरा

67· करालिनी

68· विशाल दांश्ट्रिनी

69· श्यामा

70· त्रिजाटि

71· कुक्कुटि

72· वैनायकी

73· वैताली

74· उमान्तोदुम्बरो

75· सिद्दि

76· लेलिहना

77· केकारी

78· गर्दभि

79· भृकुटि

82. क्रौंचा

83. विनता

84. सुरसा

85. सैलामुखो

86. दनु

87. ऊषा

88. रम्भा

89. मेनका

90. सलिला

91. चित्ररूपिणो

92. स्वाहा

93. स्वधा

94. वषतकारा

95. धृति

96. कषारधिनो

97. माया

98. विचित्ररूपा

99. कामरूपा

102· मंगला

103· महानासा

104· महामुखी

105· कुमारी

106· भीमा

107· साध

108· रोचना

109. मदोधता

110· अलम्बकशी

111· ` कालकर्णी

112· कुंभकर्णी

113· महाक्रूरी

114· केशिनी

115· शंखिनी

116· लम्बा

117· पिंगला

118· लोहिता मुखी

119· घंटर्वा

120· दंभत्राला

121· रोचना

124. अजामुखिका

125. महाग्रीवा

125. महामुखी

127. धूमा सिखा

128. उल्का मुखी

129. कम्पिनी

130. परिकम्पिनी

131. मोहना

132. कल्पना

133. प्रवेला

134. निर्भया

135. बहुशालिनी

136. सर्पकर्णी

137. एकाक्षी

138. विशोका

139. नन्दिनी

140. ज्योत्स्नामुखी

141. रम्भा

142. निशुम्भा

143. रक्ता कल्पना

144. अविकारा

146. चन्द्रसेना

147. मनोरमा

148. आदर्शना

149. हरतपापा

150. मातंगी

151. लम्बामेखला

152. अबाला

153. वन्चना

154. काली

155. प्रमोदा

156. लंगलावती

157. चित्रा

158. चित्रजाला

159. कोणा

160. संतिका

161. अघ विनाशिनी

162. लम्बाष्टा

163. विसाता

164. वासावुरनिनी

165. लम्बाष्टिनो

167. दोघकिशो
168. सुचित्रा
169. सुन्दरो
170. सुभा
171. आयोमुखो
172. कतुमुखो
173. क्रोधिनो
174. आसनो
175. कुतुम्भिका
176. सुक्तिका
177. चन्द्रमा
178. बालमोहिनो
179. सामान्या
180. हसिनो
181. लम्बा
182. कोविदरो
183. सावासवी
184. शाकुकर्णी
185. महानन्दा
186. महादेवी

188. हुंकारी

189. रुद्रसुता

190. रुद्रेशी

191. भूतडामारी

192. पिण्डा जिहवा

193. पलज्वालाल

194. शिवा

195. ज्वालामुखी

196. ज्येष्ठा

इस सूची का वर्णन मत्स्य पुराण में प्राप्त होता है ।[1] आरण्यक पर्व में निम्न देवियों का उल्लेख प्राप्त है[2]:-

1. काकी

2. हालिमा

3. रुद्रा

4. वृहाली

5. आर्या

6. पालाला

7. मित्रा

---

1. मत्स्य पुराण अध्याय 179/10-82

2. बी०एस०अग्रवाल , एनिसियेन्ट इंडियन कल्ट्स, पेज 27

अंगविज्जा नामक प्राकृत ग्रन्थ में प्राचीन लौकिक देवी देवताओं की दो सूचियां मिलती हैं ।[1]

1.	यक्ष	2.	गन्धर्व	3.	पितर
4.	प्रेत	5.	वसु	6.	आदित्य
7.	अश्विन	8.	सारस्वत	9.	अप्सरा
10.	वैश्रवण	11.	नक्षत्र	12.	ग्रह
13.	चन्द्र	14.	तारा	15.	बलदेव
16.	वासुदेव	17.	शिव	18.	स्कंद
19.	विशाख	20.	अग्नि	21.	मरुत
22.	सागर	23.	नदी	24.	इन्द्राग्नि
25.	ब्रह्मा	26.	उपेन्द्र	27.	गिरि
28.	यम	29.	वरुण	30.	सोम
31.	रात्रि	32	दिवस	33.	श्री
34.	ऐराणी	35.	पृथ्वी	36.	एकानासा
37.	नवमृगा	38.	सुरादेवी	39.	नागी
40.	असुर	41.	असुर	42.	द्वीप कुमार
43.	समुद्र कुमार	44.	दिशा कुमार	45.	अग्निकुमार
46.	वायु कुमार	47.	स्तिनत् कुमार	48.	विद्युत कुमार
49.	पिशाच	50.	भूत	51.	राक्षस
52.	चन्द्र सूर्य	53.	ग्रह गण	54.	नागी

---

1. अंगविज्जा, अध्याय - 51 पृ0 204-6

55.	सेनावती	56.	वाहिनी	57.	राक्षसी
58.	पिशाची	59.	भूत कन्या	60.	किन्नर
61.	किन्नरी	62.	गन्धर्व कन्या	63.	यक्षिणी
64.	वनस्पति कन्या	65.	पर्वत देवता	66.	समुद्र नदी कन्या
67.	तादगा पाल वला देवता			68.	बुद्धि
69.	मेधा	70.	लधा देवता	71.	वसु देवता
72.	नगर देवता	73.	श्मशान देवता	74.	वर्चस देवता
75.	उक्कुरुदिका देवता	76.	उत्तम मज्झिम पच्चवारा देवता		
77.	आर्य देवता	78.	म्लेच्छ देवता		

दूसरी सूची में निम्न नामों का उल्लेख मिलता है ।[1]

1.	वैश्रवण	2.	विष्णु	3.	रुद्र शिव
4.	विशाख	5.	स्कन्द	6.	कुमार
7.	ब्रह्म	8.	बलदेव	9.	वासुदेव
10.	प्रद्युम्न	11.	पार्वत	12.	नाग
13.	सुपर्ण	14.	नदी	15.	आर्य
16.	ऐराणी	17.	मातृका (मौ)	18.	शकुनि (सौनि)
19.	एक नाम्सा	20.	श्री	21.	बुद्धि
22.	मेधा	23.	कीर्ति	24.	सरस्वती
25.	यक्षी	26.	राक्षसी	27.	अप्सरा

---

1. अंगविज्जा अध्याय - 58.

28· गिरि कुमारी 29· समुद्र 30· समुद्र कुमार

31· समुद्र कुमारी 32· द्वीप कुमार 33· व्याघ्र

34· सिंह 35· हस्ति 36· वृषभ

37· चन्द्र 38· आदित्य 39· ग्रह

40· नक्षत्र 41· तारा गण 42· मरुत

43· वटकन्या 44· यम 45· वरुण

46· सोम 47· इन्द्र 48· पृथ्वी

49· दिशा कुमारी 50· कुल देवता 51· वस्तु देवता

52· पितृ देवता 53· विद्या धर 54· चारण

55· विद्या धरी 56· सर्व विद्या देवता 57· वर्चस्व देवता

58· श्मशान देवता 59· देव विद्या 60· देव विद्याधिपति

61· महर्षि 62· विद्या सिद्ध

उपर्युक्त देवी देवताओं को तीन कोटि में विभक्त किया जा सकता है[1]:-

1. बड़े देवी देवता ।

2· लघु देवी देवता ।

3· मानव देवी देवता ।

कश्यप संहिता में देवियों की जो सूची प्राप्त होती है उसमें निम्न नाम मिलते हैं ।

1· रेवाती 2· जटाहारिणी 3· पिलिपिच्छिका 4· रौद्री

1· अंगविज्जा पृ0 223-24

इन नामों के अतिरिक्त अन्य नाम भी मिलते हैं, जो महा देवियों की पूजा विशेष रूप से होती थी । सरस्वती[1] लक्ष्मीया श्री [2] सरस्वती को विद्या, मस्तिष्क, बुद्धि -मता एवं ज्ञान की देवी के रूप में जाना जाता है । लक्ष्मी या श्री को सम्पत्ति वैभव की स्वामिनी माना जाता है ।

महाभारत में संरक्षण पूर्ण देवियों की सूची भी प्राप्त होती है :-

1. काकी
2. हालिमा
3. रुद्र
4. वृहाली
5. आर्या
6. पलाला
7. मित्रा

इन्हें बच्चों की माता के रूप में जाना जाता है । स्कन्द की कृपा से उन्हें एक पुत्र प्राप्ति हुई जिसका नाम लोहिताक्ष [3] था ।

---

1. महोदेविकुले द्वे तु प्राजना श्रीश्चा प्राकृत्यायते ।
   अभ्याम् देविसहर्षिणी येर व्याप्यामखिलम् जगत ।।
   वायु पु॰9/ 85-98 ।
2. महाभारत, आरण्यक पर्व ।
3. महाभारत, आरण्यक पर्व 217/9/10 ।

मत्स्य पुराण में यक्षों के अधिपति कुबेर को शिव की उपमा दी गयी है जिसके अनुसार राज राजेश्वर नरवाहन कुबेर की शोभा ऐसी है । मानों युद्ध में नन्दीश्वर पर बैठे साक्षात् शिव जी स्वयं अवतरित हो गये हैं ।[1] यहां पर कुबेर को राजराजेश्वर के साथ ही साथ नरवाहन भी कहा गया है । अतः स्पष्ट होता है कि कुबेर को सम्मान को दृष्टि से देखा जाता था । यक्षों को किन्नरों,चारणों, विद्याधरों के साथ उल्लिखित किया गया है , अतः यक्षों का महत्व उन्हीं के समकक्ष माना जा सकता है ।

वाल्मीकि रामायण [2] में स्वर्ण संग्रह को कुबेर के [भवन] आवास का विशिष्ट लक्षण माना गया है । कोष एवं धन के विषय में कुछ नहीं, परन्तु स्वर्ण के विषय में हमें उल्लेख प्राप्त होता है । सम्भावना है कि स्वर्ण जारों में हल्की पीली मधु के एकत्रित करने की इससे सूचना मिलती हैं । इसीलिए कणिक [दानेदार] स्वर्ण को कुबेर इतनी आत्मीयता से अधिकार में रखता था । स्वर्ण के विषय में महाभारत में उल्लेख आया है कि पैपिलिका या कणिक स्वर्ण जारों में नापा जाता था ।

प्राचीन काल में शुभ रत्नों के अस्तित्व में भी जनमानस की आस्था थी, जिसके कारण कुबेर के कोष को निर्मित करना पड़ा । महाभारत में इन शुभ कारी रत्नों का वर्णन युधिष्ठिर के कोष के रूप में किया गया है । प्रत्येक नरेश अपने कोष

---

1. स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः
   उक्षाणमास्थितः संख्ये साक्षादिव शिवः स्वयं । मत्स्यपुराण अध्याय 174 श्लोक
2. कुबेर भवनोपमाम - वाल्मीकि रामायण ।

अपने कोष में इसी प्रकार की भद्र ﴾मणि﴿ प्रत्येक शासक रखता था । जातक ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के रत्नों की विशेषताओं का उल्लेख प्राप्त होता है ।

अथर्ववेद [1] में सहस्र सामर्थ्य के एक रत्न ﴾ मणि ﴿ उल्लेख आया है, जिससे प्रतीत होता है कि यक्षराज मणि भद्र जो कुबेर के बाद दूसरे महत्वपूर्ण स्थान पर था, ने अपने मंगल ﴾ भद्र ﴿ मणि के आधार पर मणि भद्र नामधारण कर लिया था। यक्ष का अमृत से सम्बन्ध ही यक्षों की उपासना एवं धार्मिक महत्व का प्रमुख कारण माना जाता है । कुबेर भवन के एक कक्ष में अमरत्व पेय का उल्लेख मिलता है , जो पीने मधु की भांति होता है परन्तु मधुमक्खियों द्वारा निर्मित नहीं किया जाता। ब्रह्म या यक्ष की जो पुजारी उपासना करते थे , यदि वे इस मधु का स्वाद ग्रहण कर लेते थे तो वे अपनी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते थे ।

इतना ही नहीं वृद्ध लोग युवक की आयु प्राप्त कर लेते थे । नेत्र हीनों को ज्योति प्राप्त हो जाती थी ।[2] इन्हें जम्भा साधक के नाम से भी जाना जाता था। लोक देव समूह के उपासक जाम्भ के रूप में प्रायः के समान ही थे । महाभारत में यक्ष के शरीर के आकार - प्रकार का भी वर्णन मिलता है ।

1· सहस्रवीर्य मणि/ मणिम् सहस्र वीर्यम् --------देवा अथर्ववेद 8/5/14

2· तत्र पश्यामहे सर्वे मधु पीतामामाक्षिकां । मरूप्राप्ते विषमे निविष्टाम्कुम्भ सम्मितम्।।

अतिविषैह रक्ष्यायानम् कुबेरादायितम् भृशम ।
यत् प्रासया पुरूषो मार्तयो अमरत्वमँ निगच्छति ।।
अचक्षुलभते चक्षुवृद्धो भवति वै युवा । इति ते कथयन्ति स्म ब्रहमन जम्भा साधकः ।
महाभारत उद्योगपर्व 62/23-25

यक्ष को आरण्यक पर्व में विशाल शरीर से युक्त वर्णित किया गया है ।[1] विभिन्न गृह सूत्रों में अन्य प्राणियों के साथ एक विस्तृत सूची उत्तरवैदिक काल के अन्त में प्राप्त सूची की भाँति मिलती है । मणि भद्र [2] का नाम सांख्यायन श्रोत सूत्र में भी प्राप्त होता है । महाभारत [3] के अनुसार यक्षों, गन्धर्वो, नागों के हृदय को प्रसन्न करने के लिए पुष्प का अर्पण किया जाता है, इसीलिए उन्हें सुमन कहा गया है । देवदार, वटिका रोवुस्ता से निर्मित सुगन्ध सभी देवताओं को प्रिय लगती है । सालाकिया की सुगन्ध देवताओं को प्रिय नहीं है ।

जहां तक सालाकिया की सुगन्ध का प्रश्न है यह दैत्यों के लिए ही प्रिय है । पुष्प एवं दुग्ध देवताओं के लिए अर्पित किया जा सकता है, जो मात्र सुगन्ध ग्रहण करते हैं । पुष्पों की आकृति राक्षसों को ग्राह्य है, परन्तु नाग तो उन (पुष्पों) का उपयोग भोजन के रूप में करते हैं । यक्षों और राक्षसों का भोजन मांस[4] एवं सुरा सारयुक्त तरल पदार्थ माना जाता है । देवताओं एवं निम्न प्राणियो के मध्य यक्षों को स्थान दिया गया है ।

---

1. विरूपाक्षम् महाकायाम् यक्षाम् ताला समुच्छ्रायाम् ।
   ज्वालांग्रा - प्रतीकासामाधिश्रयाम् पर्वतोमाम् ।।
   सेतमैाश्रित्यातिश्तान्तम् दार्दश्रा भर्तारसभा ।
   मेघागाम्भीर्य वाचा तारजयन्तम् महाबलम् ।।

   महाभारत आरण्यक पर्व 258/15
2. शांखायन श्रोत सूत्र - 1/11/6
3. हापकिन्स, इपिक मैथालोजी पृ0 68
4. हापकिन्स, इपिक मैथालोजी पृ0 68

कालिदास ने अपने ग्रन्थ मेघदूत में हिमालय पर्वत पर स्थित दिव्य अल्कापुरी में निवास करने यक्ष का उल्लेख किया है । उल्लेख के अनुसार उस यक्ष ने अपने स्वामी को प्रसन्न कर दिया है, जिसके कारण आधुनिक मध्य प्रदेश में रामगिरि पर्वत पर एक वर्ष के लिए उसे वनवास दे दिया गया । उसके वनवास का सबसे कष्टकारक समय उसका अपनी पत्नी से दूर हो जाने का है , जिसको यक्ष ने अलकापुरी (पार्वत्य नगर)[1] में छोड़ दिया है । वर्षा ऋतु जब यक्ष की दृष्टि उत्तर दिशा के उस पर्वत की ओर महान मेघ पर पड़ती है,तोवह उसी के माध्यम से अपने व्यक्त मन की बात व्यक्त करना चाहता है । यक्ष सबसे पहले मेघ को पर्वत तक पहुंचने के लिए मार्ग के विषय में जानकारी लेता है ।

यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ उस (आम्रकूटपर्वत) उस आम्र कूट पर्वत के वनचरों की स्त्रियों द्वारा उपभुक्त लतागृह में मुहूर्त भरकर, जलोत्सर्ग करने से (हल्के होने के कारण) शीघ्रगमन करने वाले तुम, उसके बाद के (आम्रकूट पर्वत के बाद में) मार्ग को पारकर प्रस्तर खण्डों से निम्नोन्नत विन्ध्याचल प्रान्त में प्रवाहमान रेवा नदी को, श्वेत खड़िया से हाथी के अंगों पर विरचित श्रृंगार रचना के समान देखोगे ।[2]

---

1. वाशम ए०एल० अद्भुत भारत , पृ० 354
2. स्थित्वा तस्मिन् वनचर वधूभुक्त कुञ्जे मुहूर्तं
   तोयोत्सर्ग द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः
   रेवां द्रक्ष्यस्यु पलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
   भक्ति - च्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गें गजस्य ।।

अलकापुरी के विषय में बताता हुआ यक्ष आगे कहता है कि हिमालय की पास ही वह यक्षों की दिव्य नगरी दिव्यमान है जिस (अलकापुरी) के अन्तर्गत उत्तम अगनाओं के साथ स्फटिक मणि वाले तारों के प्रतिबिम्ब रूपी फूलों से परिष्कृत हर्म्य स्थलों में पहुंचकर तुम्हारे सामान गम्भीर ध्वनि वाले मृंदगों के बजने पर लोग कल्पवृक्षसे प्रसूत रति फल नामक मदिरा का सेवन करते हैं ।

कालिदास ने मेघदूत में यक्ष से मेघ को उज्जैनी के विषय में बतलाते हुए लिखा है कि (हे मेघ झरोखों से निकलने वाली, केश संस्कार के लिए प्रयुक्त गन्ध द्रव्यों की धूप, परिपुष्ट शरीर वाले होकर, बन्धु प्रेम के कारण घर के मयूरों द्वारा नृत्य रूपी उपहार पाने वाले तुम, पुष्पों से सुगंधित, सुन्दर स्त्रियों के चरण राग से अंकित महलों में इस (उज्जैनी नगरी) की शोभा देखते हुए मार्ग जनित क्लेश को दूर करना ।

यक्षों के विषय में पुराणों में भी साक्ष्य प्राप्त होतेहैं । वामन् पुराण के अनुसार यक्षों के राजा मणि भद्र[1] से वटवृक्षउत्पन्न हुआ, अत: उन्हें उसके प्रति विशेष प्रेम हो गया । मणि भद्र का यहां वट वृक्ष से विशेष सम्बन्ध था । इच्छा-नुसार अपना रूप बना लेने वाले महात्मा गन्धर्व लोग[2] उसके पास जाकर उसे(सम्वरण को) जल से सींचने लगे । गन्धर्वों एवं यक्षों के विषय में उल्लेख किया गया है कि गन्धर्व अप्सरायें एवं यक्षगण [3] उत्तम स्थान की प्राप्ति के लिए वहां (कुरूक्षेत्र) निवास करते

---

1. यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद। वटवृक्ष: समभवत् तस्मिंस्तस्य रति: सदा।।
x x x x x
वामन पुराण अध्याय 17, श्लोक ;3

2. तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वा: कामरूपेण:,वामनपुराण -अध्याय 2। श्लोक 36

3. गन्धर्वाप्सरासो यक्षा: सेवन्ति स्थानकांक्षिण, वामन पुराण अध्याय 33 श्लोक 17

हैं । यक्ष के दर्शन के लिए उल्लेख आया है कि सरस्वती नदी में स्नान करके यक्ष का दर्शन करना चाहिए ।[1] कुरूक्षेत्र मेंकपिल नामक महायक्ष स्वयं द्वारपाल के रूप में विद्यमान है । यक्ष का नाम जहां उपासना की दृष्टि से उन्नत है । वहीं द्वारपाल की स्थिति में निम्नतर माना जाता है । कपिल यक्ष की उपासना उस समय कुरूक्षेत्र में की जाती थी । सभी देवता यक्ष गन्धर्व कुरूक्षेत्र में ही निवास करना चाहते हैं।

त्रिकूट पर्वत गन्धर्वों, अप्सरोओं, किन्नरों, यक्षों, सिद्धों, चारणों, पन्नगों, विद्याधरों से परिपूर्ण पर्वत माना गया है ।[2] एक स्थल पर उल्लेख आया है कि क्रोधा द्वारा यक्षों एवं राक्षसों को जन्म दिया गया है ।[3] कुबेर को पुष्पक विमान पर आसीन उल्लिखित किया गया है । निधियों के अधिपति[4] एवं विमान द्वारा यु द्ध करने वाले सामर्थ्य शाली राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर,यक्षों,राक्षसों, गुह्यकों की सेना तथा शंख , पद्म के साथ हाथ में गदा धारण किये पुष्पक विमान पर आरूढ़ वर्णित किये गये हैं ।

दिशाओं के स्वामी के रूप में सेना के पूर्व भाग में इन्द्र, दक्षिण भाग में यमराज, पश्चिम भाग में वरूण, और उत्तर भाग में कुबेर - चारों महाबली लोकपालों द्वारा चारों दिशाओं में स्थित वर्णित किया गया है ।[5]

---

1. सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्टवा प्रणम्यच ।_वामन पुराण अध्याय 33 श्लोक 20
2. गन्धर्वे : किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारण पन्नगैः ।
   विद्याधरैः सपत्नीकैः संयतैश्च तपस्विभिः ।। वामन् पुराण अध्याय 84,श्लोक 6,7
3. जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशाम्पते - मत्स्य पुराण अध्याय 171 श्लोक 61
4. राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत,
   विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ,मत्स्य पुराण अध्याय 174 श्लोक 16,17
5. पूर्वे यक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः।वरूणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ।।
   मत्स्य पुराण अध्याय 174, श्लोक 19,20

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार [1] "ई0 सन् के आरम्भ में शताब्दियों से परिचित यक्षों और गन्धर्वों ने भारतीय धर्मसाधना को एकदम नवीन रूप में बदल दिया था ... । इन आर्येतर जातियों के उपमन्यदेव वरुण थे, कुवेर थे, बज्रपाणि यक्ष थे । ... यक्ष मणियों, रत्नों का संधान जानते थे । पृथ्वी के नीचे गड़ी हुई निधियों की जानकारी रखते थे ।" कथासरित सागर एवं राजतंरगिणी ने यक्षों को धन से सम्बन्धित माना गया है ।[2] हाप्किन्स के द्वारा भी यक्षों के विषय में उल्लेख किया गया है ।[3]

महावस्तु में तीन प्रकार के यक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है उन्हें करोत्पणि, मालधर, सदमत्त , एवं याम्भक नाम से जाना जाता है । भागवत पुराण [4] एवं जैन सूत्र [5] में जाम्भक को जृम्भक नाम से अभिहित किया गया है । महाकाव्यों के उल्लेख के अनुसार ब्रह्मा ने कुबेर को तीन वरदान दिये थे[6],

1- अमरत्व

2. कोष का स्वामित्व (अथवा धनेसत्व)

3. जगत का संरक्षण या लोक पालत्व ।

बौद्ध साहित्य में कुबेर जाम्भक स्वामी जाम्भल के तुल्य

---

1. द्विवेदी हजारी प्रसाद,अशोक के फूल,पृ0 10, 11

2. मिश्र, आर0एन0,यक्ष कल्ट एण्ड आइकनोग्राफी 1981 (पृ0 55)

3. फार सम जेनेरिक इक्सप्रेसेस फार यक्षास, सुप्र पृष्ठ 2

4. भागवत पुराण 111/20/41 , पदमपुराण सृष्टि खण्ड 5/21

5. शाह यू0पी0 जे0ओ0आई0 111/1 पृ 0 56

6. पोवाभहास्तु प्रीतात्मा दशौ वैश्रवणास्या हि ।
अमरत्वम् धनेसत्वम् लोकपाला त्वमेव च ।।
महाभारत - आरण्यक पर्व 258/15

उल्लिखित किया गया है । यक्ष देवालयों के लिए अपराजिता शब्द का प्रयोग साहित्य में प्राप्त होता है । यह भी कहा जाता है कि ये देवालय सुवर्ण के कोष थे । सम्पत्ति के स्वामी के रूप में कुबेर का उल्लेख अनुचरों के स्वामित्व को स्वीकार करने के सन्दर्भ में किया गया है । यक्षों के शरीर के विषय में भी महाभारत में साक्ष्य मिलता है । उनके आवास को अबध्यपुर कहा गया है । [1] अमृत से घिरी हुई ब्रह्मपुरी का जो उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है , महाभारत में प्राप्त साक्ष्य से साम्य है । कुबेर के उड़ते हुए आवास के सहयोगी जन गुह्य नाम से जाने जाते हैं ।[2]

कुबेर को गुह्य पति कहा गया है । कथासरित सागर[3] की यक्षिणी जो वायु के माध्यम से एक मनुष्य को ले जाती है । गुह्यकी के नाम से जानी जाती है। कुबेर प्रथम स्वर्ण गलाने वाला माना गया है । तुलनात्मक रूप में कुछ वैयक्तिक ﴾विशिष्ट यक्षिणीयों की चर्चा महाभारत में नाम द्वारा प्राप्त होती है । कुबेर को नर वाहन के रूप में भी वर्णित किया गया है । कुछ समय तक इसको तथा पक्षियों अश्वों, के रूप में व्याख्या की गयी । नरवाहन को व्याख्या मनुष्यों द्वारा उत्पन्न अर्थ में मानी जाती है । महाभारत में [4] राजगृह की एक यक्षिणी को विश्व विख्यात मन्दिर के रूप में उल्लिखित किया गया है । उसकी उपासना के विषय में विविध

1• 1• महाभारत शान्तिपर्व 71/75

2• महाभारत 2/10/3

3• कथासरित सागर अध्याय 37

4. महाभारत 3/83/23

विचारधाराएं मिलती है । बाद के सन्दर्भ में अपनी आधुनिक संतति के वे भिन्न नहीं है । उदाहरण के लिए बंगाली, शितला, छोटी चेचक की देवी, सप्त मातायें, ‖ जिनका सम्बन्ध कुबेर से है ‖ 64 योगिनियां, डाकिनियां एवं कुछ देवियों के प्रकार मध्य एवं आधुनिक संस्कृति में यक्षिणियों के रूप में प्राप्त किये जाते रहे हैं । मीनाक्षी, जिनको शिव की पत्नी के रूप में जाना जाता है । वे मूल रूप में कुबेर की पुत्री थीं ।

हारीती के विषय में भिन्न - भिन्न प्रकार अवधारणायें प्रचलित हैं । वह मूलरूप से एक मगध देवी संरक्षिका, पंचिका की पत्नी एवं राजगढ़ निवास करने वाली के रूप में विख्यात थी । ह्वेनसांग के समय में वह यक्षों की माता कही जाती थीं । लोगों द्वारा उससे सन्तान के लिए प्रार्थना की जाती थी । बौद्ध साहित्य के अनुसार हारीती ने राजगृह के बच्चों को छोटी चेचक द्वारा विनष्ट करना आरम्भ कर दिया था । इस प्रकार उसने यह हारीती नाम प्राप्त किया । बौद्ध धर्म में वह चोल के रूप में जानी गयीं । हारीती को मनुष्य भक्षी दैत्यनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । महात्मा बुद्ध से इसका सम्पर्क हुआ था ।

जैन साहित्य में लोक धर्म के अन्तर्गत जहां एक ओर यक्षों का उल्लेख मिलता हैं वहीं दूसरी ओर बौद्ध वांगमय में भी यक्षों का विशद् उल्लेख मिलता है । वृक्ष उपासना का प्रारम्भिक काल सैन्धव काल माना जाता है । सैन्धव संस्कृति में देवी के स्वरूप की कल्पना वृक्षों के रूप में की गयी थी । महात्मा बुद्ध के अविर्भाव के पहले वृक्षको अत्यन्त उतना महत्व नहीं दिया जाता था जितना कि उनके द्वारा वटवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद बढ़ा हुआ दिखाईदेता है ।

दीर्घ निकाय में उपस्थान आदित्य के साथ एक देवता के उपस्थान का साक्ष्य मिलता है , जो महद् नाम से जाना जाता था । महात्मा बुद्ध ने एक स्थान पर यक्ष के विषय में जो वक्तव्य दिया था वह बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है । उसके अनुसार " यक्ष उपासना, आदित्य , गिरि देवता, तथा वन में जलते प्रकाश में आस्थाजैसे निरर्थक तत्वों को हम त्याग चुके हैं " का उल्लेख मिलता है ।

महाभारत के वन पर्व [1] में युधिष्ठिर का यक्ष से वार्तालाप यह स्पष्ट करता है कि यक्ष सरोवर का संरक्षक देवता भी था । इसी कारण कतिपय विद्वानों ने उसे सरोवर या जल का अधिष्ठाता माना है । कुबेर के उपवन चैत्र रथ में कला वृक्ष, मनोवांछित फल देने वाले वृक्ष एवं लता समूह विद्यमान थे । इसका वैभ्राज नाम भी मिलता है । मेघदूत में इसका नामोल्लेख किया गया है । कुबेर के भवन के सुवर्ण कोष में विविध प्रकार की निधियां थीं । कालिदास ने कनकसिकता [2] शब्द का प्रयोग किया है जिसका सम्बन्ध आर्थिक सम्पन्नता से है । डा० कुमार स्वामी[3] यक्ष कुबेर को शक्ति सम्पन्नता से जोड़ते हैं । मोक्ष धर्म पर्व [4] में भी यक्ष से सम्बन्धित साक्ष्य मिलते हैं । कुबेर की राजधानी कैलाश के पास अलकापुरी है । यहीं विद्यमान वर्फीले ग्राम से अलकनन्दा नदी निकलती है । अलकापुरी का सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त व्यापक ढंग में किया गया है ।

---

1. महाभारत वनपर्व अध्याय 3/3
2. कालिदास, मेघदूत, उत्तर 4
3. कुमार स्वामी, ए०के०, दाओरिजिन आफ दा बुद्ध इमेज पेज 12
4. आत्मा सत्यमम कामम हत्वा शत्रुमिवोत्तमम् ।
   प्राप्यावध्यम् ब्रह्मपुरम् राजेव स्यामहम सुखी ।।

   — मोक्ष धर्म पर्व 171/52

मनुस्मृति में यक्षों के भोज्य पदार्थों के विषय में जो साक्ष्य प्राप्त होता है , उसके आधार पर यक्षों का भोज्य पदार्थ माँस एवं नशीला पेय पदार्थ माना जा सकता है । संस्कृत कवि कालिदास के प्रसिद्ध ग्रन्थ मेघदूत [1] में यक्षों को सुन्दर कुमारी युवतियों के समुदाय में कल्पतरुओं से उत्पन्न सुरा का पान करते हुए वर्णित किया गया है । मथुरा के वछानालियन यक्ष समूह का भी उल्लेख इसी सन्दर्भ में है ।

महाभारत में राजगृह की एक यक्षिणी का साक्ष्य प्राप्त होता है,इसी ग्रन्थ [2] के अनुसार उत्तर भारत में बहुमूल्य पदार्थों की खानों की खोज करने वाला उत्खनन करने के पूर्व माँस का सेवन करता है । फूल की भेंट करने वाले कुबेर एवं मणि-भद्र का नाम ही प्राप्त होता है । आटागाडादासको में हरिनेगामेसी की पूजा स्वीकार करते हुए उल्लिखित किया गया है । सुलासा बाल्यकाल से ही हरिनेगामेसी देवता की प्रमुख उपासिका थी ।

जैन ग्रन्थों द्वारा भी यक्षों के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है । प्रसिद्ध जैन रचना भगवती सूत्र में मणिभद्र एवं पूर्णभद्र को शक्तिसम्पन्न देवता कहा गया है । उन्हें उन लोगों के साथ उल्लिखित किया गया है ,जो निश्चित तप {कठोरता} का अभ्यास करते थे । वैश्रवण के आज्ञाकारी देवों की सूची इस प्रकार से है -

1. मणिभद्र ।
2. पूर्णभद्र ।
3. सालिभद्र ।

---

1. रिच्युअल लिटरेचर ग्रीड्रिस थर्ड, टू पेज 86
2. मेघदूत कालिदास -द्वितीय, 3

4• सुमनभद्र ।

5• श्रवण ।

6• वसुरथ ।

7• पूर्ण रथ ।

8. सब्बजस ।

9• सावकम्मं ।

10• समिधा ।

11• अमोहे ।

12• आसामता ।

13• ये सभी यक्षों के नाम शुभ, पूर्णता के सूचक, समृद्धि [उत्कर्ष], वृद्धि के परिचायक हैं । मनिकुण्डवादाना में एक यक्षिणी द्वारा एक विवाह के प्रकाशित करने का उत्तरदायित्व लेते हुए वर्णन मिलता है और इसके अन्त में विवाह का उल्लेख किया गया है । स्वयंभू पुराण में हमें यक्षिणीयों के विषय में साक्ष्य मिलते हैं । कुबेर के साथ सवर्ण का विशेष सम्बन्ध माना जाता है । ऐसी अपराजिता ब्रह्मपुरी में ही महाकाय यक्ष का आवास विद्यमान था ।[1]

1• यो वै ताम् ब्रह्मणो वेद वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्मं च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजा ददुः ।।
x x x
अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पुरयोध्या
तस्यां हिरण्यः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।
तस्मिन् हिरण्यैकोशेत्र्यरेत्रि प्रतिष्ठते ।।
तस्मिन् यद यक्ष्मात्मनवत् तदेव ब्रह्मविदाविकुः
प्रभाजमाणां हरिणी यशसा स परिवताम् ।
पुरं हिरण्यमयी ब्रह्माविवेशा पराजिताम् ।।
अथर्ववेद 10/2/29-33

अष्टाध्यायी के रचनाकार पाणिनि[1] द्वारा एक ऐसा सूत्र दिया गया है जो शिशुओं के नामकरण के विषय में व्यापक रूप से उल्लेख करता है । यक्षैत्य-सुपरिसेवल तथा विशाल का नाम भी प्राप्त होता है । इतना ही नहीं, इन तीनों नामों के साथ - साथ अर्यमा एवं वरूण का नाम भी मिलता है । अर्यमा एवं वरूण वैसे तो वरूण देवता के रूप में विख्यात थे परन्तु यहां उन्हें यक्ष की कोटि में रख दिया गया है । महामयूरी ग्रन्थ में द्वारका के यक्ष को विष्णु कहकर उल्लिखित किया गया है ।

कुबेर के विषय में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है । कन्निघमं महोदय कुबेर का अर्थ " पृथ्वी का वीर मानते हैं । वाडल कुबेर को सम्पन्नों का देवता कहकर उद्बोधित करते हैं ।[2]यक्षों के स्वामी के रूप में कुबेर का उल्लेख गृह सूत्र में मिलता है ।[3] यक्षों का महाकाव्यों में राक्षसों से प्रगाढ़ सम्बन्ध होने का उल्लेख मिलता है । आरम्भ में यक्ष को लंका पर शासन करते हुए दर्शाया गया है । कुबेर के अनुचरों के रूप में राक्षसगण रहते थे, अतः कुबेर को राक्षसाधिप यक्ष राक्षसाधिप एवं राक्षसेश्वर कहा गया है ।[4] महाभारत में मणि मत नामक एक प्रमुख राक्षस की मैत्री कुबेर से उल्लिखित मिलती है ।[5]

---

1. पाणिनि, अष्टाध्यायी 3/84
2. वाडेल, एवॉलूशन आव दा बुद्धिस्ट कल्ट पृष्ठ 150
3. कीथ, ए०बी० पृ० 242
4. हाप्किन्स, ई०डब्ल्यू० मार्कण्डेय पुराण - पे० 6-10
5. महाभारत III / 158/54

कुछ समय तक इन्द्र ने कुबेर धनेश्वर का विशेष रूप से साथ दिया । धन के स्वामी के रूप में कुबेर ने इन्द्र के कर्तव्य को धारण कर लिया था ।[1] पौराणिक साक्ष्यों के अनुसार कावेरी एवं नर्मदा नदियों के संगम पर गहन तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने कुबेर को यक्षों का स्वामी बनाया था । नर्मदा नदी के तटपर स्थित अवन्ती में महात्मा विश्रवाज के आश्रम में कुबेर का जन्म होने के कारण इस स्थान को चुना गया ।

वाल्मीकि रामायण में कुबेर को गदाधर[2] की संज्ञा दी गयी है । कुबेर द्वारा अर्जुन को दिव्यास्त्र दिये जाने का उल्लेख महाकाव्य में किया गया है । महाकाव्यों में भद्र[3] एवं ऋधि की[4] उल्लेख कुबेर की पत्नियों के रूप में मिलता है । महाभारत में अष्टावक्र द्वारा "ऋद्धिमनाभव " कहकर कुबेर को आशीर्वाद देने से यह भाव स्पष्ट होता है कि कुबेर की पत्नी के रूप में अभी तक ऋद्धि के बारे में मात्र चर्चा ही चल रही थी । कुबेर की शक्ति बढ़ाने के लिए उसके विविध सेनापत्तियों ने युद्ध में भाग लिया । अन्तिम यक्ष के अधिकृत ऐश्वर्य एवं सौन्दर्य का व्यापक वर्णन मेघदूत में मिलता है । [5] कर्तव्यपरायणता से कुबेर प्रसन्न होता है ।

कुबेर को कर्तव्य पालन में किसी प्रकार की कमी प्रिय नहीं लगती । इससे सम्बन्धित साक्ष्य मेघदूत [6] में प्राप्त होता है । जिसमें कर्तव्यपालन में असफल

---

1. महाभारत -111 अध्याय , 43-44
2. रामायण 7/15/16
3. महाभारत 1/198/6 (गीता प्रेस)
4. महाभारत 3/140/7 ; 5/115/9, नारदपुराण 84/12,वेडेकर बी०ए० पृ०44।
5. कालिदास, मेघदूत,2/12-17
6. कालिदास, मेघदूत 1/1

होने के कारण कुवेर ने उसे दण्डित किया । अपने कर्तव्यों के निष्ठापूर्वक सम्पादन के लिए कभी-कभी यक्षों को पुरस्कृत भी किया जाता है ।[1] कुवेर स्वयं अपनी सेवा के लिए न केवल यक्षों का रखता था ।[2], बल्कि स्वयं एक भगवान होने के बाद भी अन्य देव समूह की आराधना समान रूप से करता था । मनुस्मृति में कुवेर को उत्तर दिशा का संरक्षक स्वामी एवं यक्षों का प्रमुख कहा गया है । अर्थशास्त्र के दुर्गनिवेश प्रकरण में संरक्षक देवताओं के लिए नगर के उत्तर में आवास निर्मित किए जाने का संकेत किया गया है ।[3] पाणिनि ने सर्वप्रथम कुवेर को महाराजा के रूप में उल्लिखित किया है ।

पाणिनि के साक्ष्य के अनुसार महाराज की भक्ति के विषय में जो साक्ष्य मिलता है उसमें उस ॥महाराज॥ ने देवता के रूप में पदवी ॥नाम॥ प्राप्त कर ली थी । [4] महाराजा बलि का उल्लेख पाणिनि द्वारा किया गया है ।[5] व्याकरण के इन विद्वानों ने कुवेर के लिए किसी क्षेत्र विशेष का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु महाकाव्यों में कुवेर के लिए उत्तरी क्षेत्र के विषय में संकेत प्राप्त होता है ।[6] कुछ साक्ष्यों में वह ॥कुवेर॥ इन्द्र के साथ पूर्वी दिशा की रक्षा करते हुए वर्णित किया गया है ।

---

1. जे0-111, 201; 4/305
2. महाभारत उद्योग पर्व 109/8 ; 13/20/21
3. मिश्रा आर0एन0 यक्षकल्ट एण्ड आइकनोग्राफी, 1981 पृ0 66
4. सूत्र-4/2/35
5. अग्रवाल वी0एस0, पाणिनि 359
6. महाभारत 13/20/1 ; रामायण 7/3/15-17

अलकापुरी प्रारम्भ में प्राचीन उत्तर कुरु नाम से प्रसिद्ध थी । उत्तर कुरुक्षेत्र में इच्छानुसार मनोवांछित वस्तुएं, जैसे - मधु, आभूषण, वस्त्र, सिंगार प्रसाधन, इत्यादि कल्पवृक्षों द्वारा प्राप्त हो जाती थीं । उसी प्रकार अलकापुरी में भी कल्पवृक्ष सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले थे । कालिदास ने जिस प्रकार का उल्लेख मेघदूतम में किया है कि उससे ऐसा लगता है कि मानो उस महाकवि ने यक्ष सदनों के अक्षय कोषों को निकट जाकर विधिवत् देखा हो ।

प्राचीन काल में उत्तर कुरु में पारिजात नामक एक उपवन था । जिसकी तरह ही कुबेर की राजधानी अलका में भी चैत्ररथ वन था । जो अत्यन्त सुन्दर था। कुबेर को तैत्तिरीयअरण्यक ग्रन्थ में देवता के रूप में वर्णित किया गया है । इस ग्रन्थ में कुबेर के बड़े भाई या अग्रज का नाम भी उल्लिखित किया गया है । कुबेर की राजधानी अल्कापुरी शिव के निवास स्थान कैलाश के पास थी । शिव एवं कुबेर के निवास आस पास होने से दोनों के घनिष्ठ सम्बन्धों का परिज्ञान होता है ।

बौद्ध साहित्य में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि महात्मा बुद्ध ने यक्ष उपासना को मिथ्याजीवी विद्या कहा है ।"चत्वारो महाराजानो " का उल्लेख भी बौद्ध वांङ्मय में किया गया है । सम्पत्ति से सम्बन्ध होने के कारण कुबेर की व्यापक ख्याति बढ़ती गयी और नृपतियों का नृपति भी कहा गया है । मन्त्रों में कुबेर को कामेश्वर राजाधिराज एवं महाराज की उपाधि से समलंकृत किया गया है।

वामन पुराण में यक्षों से सम्बन्धित अन्य साक्ष्य भी विविध स्थलों पर प्राप्त होते हैं । जिसके अनुसार यक्षों की उपासना रम्भ और करम्भ

असुरों ने भी की थी ।[1] मालवट यक्ष के प्रति एकाग्र होकर करम्भ एवं रम्भ दोनों में से एक ने जल में स्थित होकर और दूसरे ने पंच्चाग्नी के मध्य बैठकर तप किया था । जिस यक्ष से रम्भ नामक दैत्य की भेंट हुई थी उसके विषय में उल्लेख किया गया है कि अग्नि देव के कहने पर रम्भ दैत्य यक्षों से घिरा मालवट यक्षका दर्शन करने गया था । वहां उन यक्षों की एक पदम नाम[2] की निधि अनन्य चित्त होकर निवास करती थी । वहां बहुत से बकरे भेड़े, घोड़े, भैंसे, तथा हाथी और गाय वृषभ थे। यक्षों का सम्बन्ध दैत्यों से भी था । नमर नामक दैत्य का सम्बन्ध यक्षों से बताया गया है । वामन पुराण के अनुसार वन्य पशुओं को मारते हुए यक्षों के आश्रय में रहने वाला वह पराक्रमी दैत्य नमर नाम से प्रसिद्ध हुआ । भगवान ने राजा को चन्द्र नामक यक्ष प्रदान किया । एक उल्लेख के अनुसार उपूखला मेखला महायक्षी ई कपिल की पत्नी दुंदुभी बजाकर नित्य कुरूक्षेत्र में भ्रमण करती है

1· इत्येवमुक्तोदेवेन वह्निना दानवोययौ
द्रष्टुं मालवटं यक्षं यक्षैश्च परिवारितम् ।।
तेषां पदमनिधिस्तत्र वसते चान्यचेतनः ।
गजाश्च महिषाश्चाश्वा गावोऽजाविपरिप्लुताः ।।
वामन पुराण अध्याय 18 श्लोक 53, 54

2· तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्नि पच्चमी ।
करभंश्चैव रम्भश्च यक्षं मालवटं प्रति ।।
वामन पुराण अध्याय 17, श्लोक 44

ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्म में नाग उपासना का महत्वपूर्ण स्थान है। नाग पूजा की परम्परा यक्ष परम्परा से प्राचीन प्रतीत होती है। वैदिक साहित्य में नागों के विषय में प्रचुर साक्ष्य प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद[1] में वर्णित है कि शिव एवं रुद्र का सम्बन्ध सर्पों से था। सम्भवतः प्राचीन समय में सर्प एवं नाग दो पृथक धार्मिक स्वरूपों में थे, परन्तु उनके भेद के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। नाग देवता की पूजा एक प्राचीन भारतीय पूजा पद्वति है। इसे नागमह के रूप में भी जाना जाता था। ऋग्वेद[2] में गरूड़ को "गरुत्मा सुपर्ण" कहा गया है। नागों एवं सुपर्णों के बीच पारिवारिक {जातिगत} कलह की पौराणिक कथा देवासुर युद्ध की अनुकृति प्रतीत होती है, जिसमें सुपर्ण ज्योति की दैवी {आकाशीय} आत्मा का वर्णन किया गया है। सूर्य के दो नामों में – प्रथम सुपर्ण एवं द्वितीय गरूड़ नाग से थे। गरूड़ एवं नागों के मध्य जो अर्न्तविरोध है वह है – प्रकाश एवं अन्धकार का सम्बन्ध। महाकाव्य युग में सुपर्ण उपाख्यान का संकेत मिलता है। महाभारत में इसका सन्दर्भ स्पष्ट रूप से वर्णित है। सौन शब्द हिन्दी के सुपर्ण शब्द से प्राप्त किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में गरूड़ एवं नागों का उल्लेख मिलता है जिसमें विनता सुपर्णी के पुत्रों एवं कद्रू के पुत्रों के मध्य का संघर्ष उल्लिखित किया गया है। सुपर्ण साहित्य एवं सामवेद में सुपर्ण चंत के नाम से प्राप्त होता है।

---

1. यजुर्वेद – 3/61
2. ऋग्वेद – 1, 164/46

नागोपासना का लोक धर्म में सर्वोत्कृष्ट उदाहरण राजगृह के मनियार मठ से प्राप्त होता है । इसके अलावा कश्मीर में नाग देवताओं की उपासना के स्पष्ट संकेत भी प्राप्त होते हैं । हिन्दी साहित्य में नागों के अष्टकुली या अष्ट परिवारों का उल्लेख प्राप्त होता है । जिनके नामों की सूची इस प्रकार है -

1. शेष
2. वासुकि
3. कम्बाला
4. कुलिक
5. पदम
6. महापदम
7. कार्कोटक
8. शंख

अन्य सूची में जो नाम प्राप्त होते हैं उनमें तक्षक, अश्वातारा, धृतराष्ट्र, बालाहाका आदि । वाणभट्ट[1] द्वारा भी नाग कुल का उल्लेख किया गया है । आरण्यक पर्व [2] के तीर्थयात्रा अध्याय में राजगृह के गर्म झरने [उग्रकुल] का उल्लेख किया गया है । जिसके अनुसार गर्म झरने में स्नान करने के उपरान्त यात्री को यक्षिणी मन्दिर में वितरित प्रसाद को प्राप्त करने का संकेत किया गया है ।

---

1. प्रसिद्धेषु नागाकुला हृदयेषु मामाजा - कादम्बरी, वैद्य प्रकाशन पृ0 65
2. यक्षिण्या नैत्याकम तत्र प्राशनिता पुरुषाह सचिह ।

जातक ग्रन्थों द्वारा भी नागों की परम्परा का साक्ष्य मिलता है । उदाहरण के लिए भूरिदत्त नाग , चंपक नाग, एवं शंखपाल नाग । लौकिक साहित्य में नागों को क्षेत्र देवता के रूप में वर्णित किया गया है । उनको खेतों एवं पृथ्वी के महत्वपूर्ण भागों के संरक्षक देवताओं के रूप में माना गया है । वे वहां बल्मीक में रहते हैं । और जमीन में गड़े धन के कोषों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करते हैं । वे किसी को भी कोष स्पर्श करने की अनुमति नहीं देते हैं । जो नाग की उपासना द्वारा सन्तुष्ट करता है वह ही कोष को हटाने के योग्य माना जाता है ।

कुबेर के भवन में अमरत्व पेय की सुरक्षा के लिए सर्पों का उल्लेख वी०एस० अग्रवाल[1] द्वारा भी किया गया है । जिस वर्तन में वह पेय रखा जाता है उसकी सुरक्षा का दायित्व सर्पों पर ही रहता था । बौद्ध साहित्य में नागों का सम्बन्ध महात्मा बुद्ध के जीवन से भी रहा है । बुद्ध के जन्म के तत्काल बाद दो नागों ने उनकी पूजा स्तोत्र द्वारा की । उन दोनों नागों का नाम नन्द एवं उपनन्द था । निरंजना नदी में रहने वाले एक नाग देवता का साक्ष्य भी बौद्ध साहित्य में मिलता है । बुद्ध को नदी में स्नान करने के बाद वहां की नाग राज सागर पुत्री ने एक रत्न जटित आसन प्रदान किया था ।

सम्बोधि प्राप्त करने के बाद महात्मा बुद्ध ने बोधि वृक्ष के नीचे विश्राम किया था । उन्होंने दूसरे सप्ताह वहां पर मुचुलिन्द पाद का जीर्णोद्धार कराया था । उस समय नाग राज मुचुलिन्द ने अपने विवर से बाहर आकर महात्मा बुद्ध के शिर पर फणों का वितान बना दिया था । जब महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम

---

1. अग्रवाल वी०एस०, ऐंसिएंट इण्डियन फोक कल्ट्स पृ० 175

उपदेश सारनाथ में दिया था, तो वे उरुविला ग्राम [पालो : उरुवेला] भी गये थे । उरुविला में ऋषि कश्यप का आश्रम था, जिसके एक भाग में रहने वाले एक भयंकर नाग को महात्मा बुद्ध में अपने वश में किया था ।

मूल नक्षत्र में उत्पन्न बच्चों के जन्म से सत्ताइस दिन के बाद शान्ति स्थापना के लिए एक विशेष धार्मिक अनुष्ठान की मान्यता रही है । शिशु का नामकरण संस्कार 27 दिन के बाद ही रखा जा सकता है । इतने समय तक केवल माता ही पुत्र को देख सकती है । पिता नहीं । सत्ताइसवें दिन सत्ताइस पात्रों के साथ एक जार का प्रयोग मूल बच्चे के स्नान के लिए वर्तनों से बहते हुए जल की धारा में किया जाता है । चन्द्रमा सम्बन्धी भवन का अध्यक्ष मूल नामक देवता एक सर्प ही माना जाता है । इस उल्लेख के आधार पर साहित्य में सर्प के विषय में विशेष साक्ष्य मिलता है ।

विविध देवता वृक्ष, पांइस,नाग,यक्ष एवं भूत आदि की उपासना से सम्बन्धित हैं । स्वात नदी के तट पर विद्यमान मंगला पुरा स्थान पर अपालला नामक नाग के रहने का साक्ष्य मिलता है । वह नदी को सामान्य क्षेत्र बनाकर बाढ़ द्वारा व्यापक विनाश का कारण माना जाता था । उसे बुद्ध ने उपदेश से परिवर्तित करने का प्रयास किया था । बुद्ध के निर्वाण के बाद उनकी अस्थि भस्म के आठ दावेदारों में से एक राम ग्राम क्षत्रिय शासक भी था । जिसने अस्थि अवशेष का एक भाग प्राप्त किया था । राम ग्राम में उनके द्वारा नागों की देख-रेख में एक स्तूप का निर्माण किया गया था जिसके संरक्षक नाग ही थे ।

नागों के विषय में साहित्यिक साक्ष्य के अन्तर्गत महाभारत का उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है । महाभारत के अनुसार जब चोरी करने के कारण क्षपणक को उत्तंक ने दौड़कर पकड़ना चाहा था , तो वह तक्षक नाग का स्वरूप धारण करके सहसा प्रकट पृथ्वी के बड़े विवर में घुस गया था।[1] बिल में प्रवेश करके वह अपने घर चला गया । तदन्नतर उस क्षत्राणी की बात का स्मरण करके उत्तंक ने नाग लोक तक तक्षक का पीछा किया । इन्द्र द्वारा दिये गये वज्र से उस बिल को विदीर्ण कर दिया, जिससे पाताल लोक में जाने का मार्ग सरल हो गया ।

उत्तंक ने जब नाग लोक में प्रवेश किया तो देखा कि नाग लोक की कहीं सीमा नहीं थी । वह स्थान अनेक प्रकार के मन्दिरों, महलों, झुके हुए छज्जों वाले ऊँचे-ऊँचे मण्डपों तथा सैकड़ों दरवाजों से सुशोभित और छोटे-बड़े अद्भुत क्रीड़ा स्थलों से व्याप्त था । ऐरापत कुल में उत्पन्न नाग गणों में सुन्दर रूपवान नागों का उल्लेख मिलता है जो विचित्र कुण्डल धारण करते हैं । आकाश में सुर्य देव की भाँति प्रकाशित होते हैं । महाभारत में गंगा जी के उत्तरी तट पर बहुत से नागों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है ।[2] वहां रहने वाले बड़े-बड़े सर्पों की वन्दना किये जाने का भी प्रसंग प्राप्त होता है । नाग राज का सेनापति धृतराष्ट्र माना गया है । वह जब प्रयाण करता है तो अट्ठाइस हजार ।80 नागों की सेना

1· स तं जग्राह गृहीतमात्रः सद्रूपं विहाय तक्षकस्वरूपं कृत्वा
सहसा धरण्यां विवृतं महाबिलं प्रविवेश ।
महाभारत, आदिपर्व तृतीय अध्याय ।29

2· बहूनि नागवेश्मानि गंगायास्तीर उत्तरे ।
महाभारत आदिपर्व 3/135

उसके पीछे चलती थी ।[1] तक्षक एवं अश्वसेन का आवास इक्षुमती नदी तट के पास कुरुक्षेत्र का स्थान था । शौनक ने जब सूत्र पुत्र से आस्तीक नाग के विषय में पूंछा तो सूत्र पुत्र ने बताया कि सतयुग में दक्ष प्रजापति की दो कन्यायें कद्रू एवं विनता थी । वे दोनों कश्यप की पत्नी कश्यप ने प्रसन्नता में उन दोनों को वरदान दिया।[2] कद्रू ने वरदान में समान तेजस्वी एक सहस्र नाग पुत्र रूप में माँगा था । विनता ने तेज,शरीर और विक्रम इन तीनों में कद्रू के पुत्रों से भी अधिक बलवान पुत्र माँगे ।[3]

मन्दर पर्वत को मंथान और वासुकि नाग को नेती बनाकर देवता और दानव अमृत के लिए जल के निधि समुद्र का मन्थन करने लगे ।[4] ब्रह्मा ने कश्यप से बताया कि आपने जो ये डंक मारने वाले जहरीले सर्प उत्पन्न किये हैं । इनको इनकी माता ने शाप दिया है । इस विषय में आपको कुछ भी क्रोध नहीं करना चाहिए ।

---

1. शतान्य शीति रष्टौ च सहस्राणि च विंशति : ।
महाभारत आदिपर्व अध्याय 3 , 137

2. ते भार्ये कश्यपस्याऽऽस्तां कद्रूश्च विनता च ह ।
प्रादात्ताभ्यां वरं प्रीत: प्रजापति सम: पति : ।।
महाभारत आदिपर्व , अध्याय 16 , 6

3. आदिपर्व अध्याय - 16, 8,9, ।

4. मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम्
देवा मथितुमारब्धा: समुद्रं निधिमम्भसाम् ।।
अमृतार्थे पुरा ब्रह्मस्तथैवासुर दानवा: ।। आ0पर्व0 अध्याय 18 ,13,14 ।

नागों के आवास (पाताल लोक) को सब रत्नों की खान, वरुण के आलय, नागों के घर, नदियों के उत्तम पति[1], शुभ दिव्य, देवताओं के लिए अमृत उत्पादक[2], पांचजन्य शंख के उत्पादक[3] कहें गये हैं । महर्षि अत्री द्वारा सौ वर्ष वास करने पर भी थाह न पाने वाले पाताल लोक का साक्ष्य महाभारत में मिलता है ।[4] कद्रू ने विनता से जिस आवास के विषय में बताया वह समुद्र- कुक्षि के एकान्त में (नागों का) सुन्दर आवास था ।[5] गरूड़ की पीठ पर बैठे नाग जब सूर्य की किरण से मुर्च्छित हो रहे थे तो माँ कद्रू ने इन्द्र से वर्षा की प्रार्थना की थीं । जिसके फलस्वरूप इन्द्र की वर्षा हुई और चतुर्दिक पृथ्वी जलमग्न हो गयी । इस प्रकार नाग अपनी माता के साथ रामणीयक नाम द्वीप की ओर चल पड़े ।[6]

---

1. नागा नामालयं रम्यमुत्तमं सरितां पतिम् ।। 8, वही अध्याय 21
   शुभं दिव्यममर्त्यानाममृतस्या ऽऽकरं परम् ।
2. अप्रमेयम चिन्त्यं च सुपुण्य जलमद्भुतम् ।। 10, वही अध्याय 21
3. पांच जनस्य जननं रत्नाकरममुत्तमम् ।। 11, वही, अध्याय 21
4. अनासादितगाधं च पातालं तलम व्ययम् ।। 13, वही, अध्याय 21
5. नागानामालयं भद्रे सुरम्यं चारुदर्शनम् । समुद्र कुक्षावेकान्ते तत्र मां विनते नय ।
   वही, अध्याय 24, 4
6. रामणीयकमागच्छन्मात्रासहभुजंगमा: ।
   महाभारत - अध्याय 26, 8

गरूड़ जब अपनी माता को छुड़ाने केउपलक्षमें, सर्पों के लिए अमृत लाने बल पूर्वक अमृत के पास पहुंचे तो उन्होंने छूरे के समान तीक्ष्ण धार [1] वाले एक लौह चक्र को अनवरत घूमते हुए देखा । जिसके नीचे जलती हुई अग्नि सादृश्य कान्ती वाले, विद्युत सी जिहवा धार से युक्त, भयंकर मुख और आंखों वाले, विष धारी, महाघोर फूत्कार मारते हुए, तीक्ष्ण वेगशील दो सर्पों को अमृत की रक्षा करते हुए देखा ।[2]

नागों की संख्या प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है । प्रमुख सर्पों का नाम निम्न रूपों में पाया जाता है ।[3] शेष, वासुकि, ऐरावत, तक्षक, कारकोटक, धनञ्जय, कालिय, मणि, आपूर्ण, पिंञ्जरक , एलापत्र, वामन, नील, अनील, कलमाष, शबल, आर्य, उग्र , कलशपोत सुमन, दधिमुख, विमल पिण्ड, आप्त, शंख, वालिशिखा निष्ठानक, हेमग्रह, नहुष, पिंगल, वाह्यकर्ण, हस्तिपद, मुग्दर, पिण्डक, कम्बल, अश्वतर, कालीयक, वृत्त, संवर्तक, पद्म, महापद्म, शंखमुख, कूष्माण्डक, क्षेमक, पिण्डारक, करवीर, पुष्प दंष्ट्र , पिल्वक, पिल्व, पाण्डुर, मूषकाद, शंखशिरा, पूर्णभद्र, हरिद्रक, अपराजित, ज्योतिक, श्रीवह, कौरव्य, धृतराष्ट, शंख पिण्ड, विरजा, सुबाहु शालिपिण्ड, हस्तिपिण्ड, पिंडरक, सुमुख, हीलक, कर्दम, बहुमुलक, कर्कर, अर्क्क, कुण्डोदर और महोदर इत्यादि नाम प्रमुख रूप से हैं ।

---

1. आदिपर्व - अध्याय 33,2

2. अधश्चक्रस्य चैवात्र दीप्तानल समद्युती ।
विद्युज्जिह्वौ महावीर्यौ दीप्तास्यौ दीप्तलोचनौ ।।
चक्षुर्विषौ महाघोरौ नित्यं क्रुद्धौ तपस्विनौ ।
रक्षार्थ मेवामृतस्य ददर्श भुजगोत्तमौ ।। महाभारत आदिपर्व 33/5-6

3. महाभारत आदिपर्व 35/ - 5- 16

महाभारत [1] में मणि नाग मन्दिर में यात्रियों द्वारा एक रात्रि व्यतीत करने का वर्णन मिलता है । अर्जुन एवं भीम के साथ जब श्रीकृष्ण राजगृह गये थे,तो उन्होंने वहां पर चार नाग देवताओं के विषय में विस्तृत रुप से सभी को बताया था । उन चारों के नाम थे - स्वास्तिका , साक्रावापि , आरबुदा एवं मणि नाग। पंच तन्त्र कि उपाख्यान के अनुसार एक ब्राह्मण स्त्री को नाग रूप में एक पुत्र प्राप्त हुआ था । उस स्त्री ने उसके विवाह के लिए एक सुन्दर कुमारी कन्या से प्रस्ताव किया । वर एवं कन्या के परस्पर मिलने के समय नाग ने अपनी केंचुल का परित्याग कर दिया और एक ब्राह्मणयुवक के रूप में हो गया । अपनी पत्नी के साथ दाम्पत्य जीवन यापन करने के लिए वह उसके साथ रहने लगा । इस लोक कथा का ऐतिहासिक महत्व भी माना जाता है ।[2]

पुराणों में भी नागों से सम्बन्धित साहित्यिक साक्ष्य प्राप्त होतेहैं । वासुकि नाग के उल्लेख में कहा गया है कि अतिशय शक्तिशाली वासुकि अनेक तेजस्वी नागों के साथ देदीप्यमान रत्न सिंहासन पर आसीन था । उसके मस्तक पर चतुर्दिक किरणें फैल रही थी । कण्ठ में रत्न हार सुशोभित रहता था । जब आसुतोष ने देवांतक एवं नरांतक की तपस्या से प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने को कहा तब उन दोनों ने हर्षित होकर यह वर याचना की " देव, देवेन्द्र, असुर, मनुष्य,यक्ष,राक्षस,

---

1. मणिनागम् ततो गत्वा गो-सहस्रा -फलम लभेत् ।
   नैत्याकाम भुंक्ते यस्तु मणिनागस्या मानवा: ।।
   दश तस्या सिविशेन पिना तस्या क्रामाते विषम् ।
   तात्रोश्या राजानिमेकम् सार्वपापिह प्रामुच्यते ।।
   महाभारत आरण्यक पर्व - 82, 91-92
2. अग्रवाल वी0एस0 ऐनसियेन्ट इंडीयन फोक- कल्ट्स, पृ0 108

पिशाच,गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, शस्त्र, पशु, ग्रह, नक्षत्र, भूत, सर्प, कृमि, द्वारा वन एवं ग्राम्य में हमारी मृत्यु न हो । "

गणेश पुराण[1] के अनुसार देवांतक ने देवताओं को सुमेरु गिरि गह्वर में शरण लेने के लिए विवश कर दिया था । ऋषि मुनियों ने यज्ञ स्वाध्याय छोड़कर पर्वत गुफाओं में आश्रय ले लिया था । इसके बाद नरांतक ने नाग लोक पर विजय पाने के लिए असुरों ने युद्ध प्रवीण वाहिनी और कूटनीति दक्ष असुरों को भेजा था। असुरों ने गरूड़ का वेश धारण करके नाग लोक में उपद्रव आरम्भ कर दिया । असंख्य वीर नाग कालकवलित हो गये । विवश होकर नाग लोक ने नरांतक की अधीनता स्वीकार कर ली । सहस्र फणधारी शेषनाग ने नरांतक को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया ।

नरांतक ने एक वीर दैत्य को नाग लोक का अधिपति बनाया । उसने सम्पूर्ण पाताल लोक में यह घोषणा कर दी कि असुर शासन में सभी नाग शान्त पूर्वक रहें,किसी भी नाग के द्वारा नियम का उल्लंघन किये जाने पर सम्पूर्ण नाग जाति को दण्डित किया जायेगा । लोक परम्पराओं में भी नागों के अस्तित्व का परिज्ञान प्राप्त होता है । कुमायूं लोक परम्परा के अनुसार एक वैभव सम्पन्न व्यक्ति के पास कोई पुत्र नहीं था । अतः उसने अपनी स्त्री से अप्रसन्न होकर उसको घर से बाहर निकाल दिया । उस स्त्री ने भिखारिन के रूप में स्वरूप धारण कर लिया । एक दिन उसने अचानक एक छोटे डण्डे की भाँति एक नाग को देखा और अपनी टोकरी में उठाकर रख लिया । दूसरे दिन नाग का आकार बढ़कर पूरी टोकरी में परिपूर्ण

---

1. सर्वे सुरा गता हेमगिरि गहवर मुत्तमम् ।
कन्दमूल फलाभ्यादीन्नन्यूर्द:खेन वासरान् ।। गणेश पुराण 2/3/39

उस स्त्री ने उसे जब एक और बड़ी टोकरी में रखा तो वह टोकरी भी सर्प से पूर्ण हो गयी । इस प्राकृतिक घटना के बाद वह अपने पति के खेत में गयी और उसने नाग को पति के अन्न भण्डार में रखा । वह अन्न भण्डार भी नाग के शरीर से भर गया । इसके अनन्तर उस स्त्री ने अपने पति को सूचित किया कि उसने एक पुत्र प्राप्त किया है जिसके निवास के लिए घर की आवश्यकता है । उसके पति ने एक विशाल भवन का निर्माण कराया । नाग को स्थान प्रदान किये जाने पर वह घर भी उसके शरीर से पूर्णतः भर गया । उस स्त्री ने जब अपने पति से उसके विवाह की चर्चा की तो उसके पति ने कहीं से एक अनाथ कन्या लाकर उसका विवाह उससे कर दिया । नाग पत्नी ने नाग के शरीर पर नाग की माँ द्वारा दिये गये कुछ ऐन्द्र-जालिक (विलक्षण) तैलीय तरल पदार्थ को लगाया ।

इसके अनन्तर तीसरे दिन नाग ने केंचुली बदलकर एक सुन्दर युवक का रूप धारण कर लिया । नाग की माँ ने उसी रात्रि में केंचुली एकत्र करके अपने अधो-वस्त्र के साथ जलाने की सलाह उस पत्नी को दी । पत्नी ने उसका अनुसरण तो किया परन्तु केंचुली का एक भाग बिना जले ही छोड़ दिया । ऐसी मान्यता है कि नाग ने उसमें प्रवेश करके अपना आकार ले लिया । नाग माता ने उस पर ध्यान रखने तथा सम्पूर्ण त्वचा पर राख लगाने की सलाह दी । इस कार्य के फलस्वरूप उसका पति एक मानव रूप में उसके साथ रहने लगा ।[1] अन्य देशों की लोक परम्प-राओं में भी यह साक्ष्य मिलता है कि पशु स्वरूप को जलाकर मानव रूप को बचा लिया जाता है ।[2]

1· वॉगेल , इण्डियन सरपेन्ट लोर , पृ0 166, 174

2· जनरल आफ दी यू0पी0 हिस्टारिकल सोसाइटी, वाल्यूम -1, पृ0 37-38

विभिन्न वंशों में नागों का उल्लेख महाभारत में इस प्रकार मिलता है ।

1. वासुकि वंश में उत्पन्न नाग[1]:-

मानस, कालवेग, पूर्ण , सल, पाल, हलिमक, पिच्छल, कौड़प, चक्र, प्रकालन, हिरण्य बाहुशरण, कक्षक, कालदन्तक, ये नाग नील रक्त सित घोर, महाकाय एवं महाविष वाले हैं ।[2]

2. तक्षक वंश में उत्पन्न नाग :-

पुच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेकता, रभेणक, उच्छिख, शरभ, भंग, बिल्वतेजा, विरोहण, शिलि, शलकर, मूक, सुकुमार , प्रवेपन, मुद्गर, शिशुरोमा, सुरोमा, महाहनु आदि ।

3. ऐरावत नागकुल के नाग, पारावत, पारियात, पाण्डर, हरिण, कृश, विहंग, शरभ, मेद प्रमोद, संहतापन, इत्यादि ।

4. कौरव्य कुल में उत्पन्न नाग :

केरक, कुण्डल, वेणी स्कन्ध, कुमारक, वाहुक, श्रृंगवेर, धूर्तर, प्रातर, आतक ।[3]

---

1. आदिपर्व अध्याय 57 - 5 - 7
2. आदिपर्व अध्याय 57 (4)
3. आदिपर्व अध्याय 57 - 9- 14

वाल्मीकि रामायण में सुरसा को नाग माता कहा गया है । पृथ्वी ने अपने गह्वर में प्रवेश के लिए सीता को जो स्वर्ण सिंहासन प्रदान किया था,उसे नाग ही अपने सिर पर उठा कर लाये थे । हनुमान ने लंका में रावण के आवास पर एक नाग कन्या को देखा था । सुजाता द्वारा दी गयी खीर खाते समय महात्मा बुद्ध जिस रत्न सिंहासन पर आसीन थे,उसको नाग कन्या नदी से उठाकर लायी थी । नाग वंश प्राचीन काल से देवताओं के साथ जुड़ा हुआ है । विष्णु शेष नागपर शयन करते हैं । कृष्ण कालिय नाग के फण पर नृत्य करते हैं,तो शिव जहरीले सर्पो के हार को गले में धारण किये रहते हैं ।

इस नाग जाति का प्रभुत्व जल,थल, अन्तरिक्ष पर है । दिग्पाल के रूप में दिग्नाग आक्रामकों से रक्षा करके हमारी संचित निधि की पूरी सतर्कता से रक्षा करता है । नाग एक ऐसा विचित्र जीव है जिसकी गणना देवता,दानव, और कभी - कभी मानव के रूप में भी की जाती है । इस चित्रण कहीं - कहीं अर्ध मानव रूप में भी किया गया है । इसके फणों के जहर से चराचर के प्राणी भयभीत रहते हैं । इस काल व्याल के गाल को यद्यपि मृत्यु हमेशा चूमती रहती है तथापि भारत में उसे दुग्ध पान कराकर पूजा जाता रहा है । यूरोप के विद्वानों ने इस पर आश्चर्य व्यक्त किया है कि भारत में विषधर सर्प की ही पूजा प्रतिष्ठा की जाती है जबकि उसके शत्रु और मानव जाति को सर्प संकट से मुक्त दिलाने वाले गरूड़ की कहीं पूजा नहीं होती ।

पुराण साहित्य में भी नागों के विषय में पर्याप्त साक्ष्य प्राप्त होते हैं । मत्स्य पुराण के अनुसार - हिरण्यकशिपु द्वारा पृथ्वी के प्रकम्पित किये जाने

पर पर्वत तथा अमित तेजस्वी नाग गण गिरने लगे । वे चार,पाँच अथवा सात सिर वाले नाग विष की ज्वाला से व्याप्त मुखों द्वारा अग्नि उगलने लगे । वासुकि,तक्षक, कार्कोटक , धनञ्जय, एलामुख, कालिय, पराक्रमी महापद्म, एक हजार फणों वाला सामर्थ्य शाली नाग हेमतालध्वज तथा महान भाग्यशाली अनन्त-शेषनाग ये सभी कांप उठे थे । उस समय पाताल लोक में विचरण करने वाले तेजस्वी नाग भी प्रकम्पित हो उठे ।

इस पौराणिक साक्ष्य के आधार पर नागों के अस्तित्व का बोध होता है । तीनों लोकों का परिचय मत्स्य पुराण इस उल्लेख से द्योतित हो जाता है । मत्स्य पुराण के एक अन्य स्थल पर स्कन्ध के जन्म के समय उल्लेख आया है कि कुबेर ने स्कन्ध को दस लाख यक्ष प्रदान किये । अग्नि ने तेज दिया । वायु ने वाहन समर्पित किया ।[1] यक्ष एवं नाग सभी साथ - साथ थे ।[2]

बौद्ध एवं जैन साहित्य में नागों के सौम्य स्वरूप का उल्लेख मिलता है । इन दोनों साहित्यों में नागों को सम्भ्रान्त कोटि के देवताओं की श्रेणी में भी रखा गया है । पुराण साहित्य के अनुसार पंचमी तिथि को नागों की उपासना करनी चाहिए । ज्योतिष में पंचमी तिथि सांपों के लिए महत्वपूर्ण मानी गयी है ।

---

1. यक्षाणां दश लक्षाणि ददावस्मै धनाधिपः ।
   ददौ हुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम् ।
   मत्स्य पुराण, अध्याय 159 श्लोक 9,10

2. आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भि दैवतैस्तथा ।
   रुद्रै र्विश्व सहायैश्च यक्ष राक्षसपन्नगैः ।
   x x xx xx x
   राजर्षिभिः पुण्य कृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
   मत्स्य पुराण अध्याय 161 श्लोक 6,7,8

आदिपर्व के अनुसार ब्रहमा ने एक बार शेष से कहा कि " शैल, वन, समुद्र, ग्राम, विहार, स्थान, नगर, आदि से युक्त इस चल पृथ्वी को ठीक-ठीक ग्रहण करके इस प्रकार धारण करों, कि यह अचल हो जावे ।[1]" नाग पाण्डित्य अभिमान रखने वाले भी थे ।[2] वे विचार करने में दक्ष भी थे ।[3] वे रूप बदलने में प्रवीण थे, क्योंकि जनमेजय के पास वे ब्राह्मण रूप में जाने की योजना बना रहे थे।[4]

नागराज तक्षक के विष के प्रभाव के विषय में उल्लेख मिलता है कि काश्यप के कहने पर उस नाग राज तक्षक से डसा हुआ वट- वृक्ष सर्प विष से युक्त होकर चतुर्दिक जलने लगा था । तक्षक ने तपस्वी के रूप में फल और कुशा का जल लेकर राजा के पास नागों को भेजा था । इसके साथ ही उनसे यह भी कहा था कि तुम बिना किसी घबराहट के किसी कार्य के बहाने आर्शीवाद के फल और पुष्प लेकर राजा को देने चले जाओ । विधाता और ऋषि शाप से प्रेरित जब वह राजा सचिवों के साथ फल ग्रहण करने लगा तब संयोग से जिस फलको वह खा रहा था उसी में तक्षक था । फल खाते समय एक छोटा कीड़ा निकला जो श्वेत नेत्र वाला एवं लाल वर्ण का था ।

कीड़े को राजा गले में लपेट कर सहसा हँसने लगा । जो फल राजा को भेंट में मिला था उससे निकलकर तक्षक सर्प ने राजा को लपेट लिया । फुँकार मारकर सर्प राज तक्षक ने राजा को डस लिया । जब परीक्षित के पास कश्यप उपचार करने जा रहे थे । तभी तक्षक ने उनसे मिलकर पूँछा, कियदि आप राजा के पास मात्र धन

1· इमांमहीं शैलेवनोपपन्नां स सागर ग्राम- विहार पत्तनाम त्वं शेषं सम्यक्चलितां यथावत्संगृह्य तिष्ठस्व यथा अचलास्यात ।। महाभारत आदि पर्व 36/20

2· पण्डितमानिनः । आदिपर्व 37-13

3· मन्त्र बुद्धि विशारदाः ।। आदि पर्व 37- ।।

के लिए जा रहे हों तो धन लेकर यहीं मेरे पास से लौट जाइये । कश्यप ने कहा कि मैं धन के लिए ही जा रहा था । नागराज ने कश्यप को उनकी इच्छानुसार धन प्रदान करके उन्हें वापस लौटा दिया । महाभारत में तक्षक के लिए "दुरात्मा" शब्द प्रयुक्त किया गया है ।[1]

नागों के सम्बन्ध में जहां एक ओर महाभारत में इतनी व्यापक जानकारी मिलती है वहीं बाल्मीकि रामायण ,वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थ, जैन एवं बौद्ध साहित्य में भी इनका उल्लेख मिलता है । अथर्ववेद में नागों को विशिष्टताओं और उनके सुन्दर स्वरूपों का वर्णन तो किया ही गया है,साथ ही उनके भयंकर कार्यों का उल्लेख भी किया गया है । संस्कृत महाकाव्य रघुवंश में कालीदास ने कुमुदवती नामक नाग कन्या का उल्लेख किया है । जिसने सरयू में नहाते समय राम सुवन कुश के रतनाभरण का हरण कर लिया था । कुमुदवती ने अन्तत: वह रत्न ही नहीं लौटाया अपितु अपना जीवन भी उसी कुश को सौंप दिया । नागों की नागमणि का उल्लेख प्राप्त तो होता है परन्तु किसी ने प्रत्यक्ष रूप से उसे देखा नहीं है ।

प्राचीन भारतीय साहित्य के शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ कल्हण कृत राज-तरंगिणी में महापद्म नामक नाग राज का उल्लेख है, जिसमें वह दक्षिण से आये सपेरे से रक्षा करने पर विपुल स्वर्ण राशि देने का वचन देता है । लोक साहित्य में ऐसी मान्यता रही है कि नाग नागमणि को अपने फण के ऊपर धारण करते हैं और यदा-

---

1. अनन्तरं च मन्येऽहं तक्षकाय दुरात्मने ।
महाभारत, आदिपर्व अध्याय - 50- 52

कदा उसे धरती पर रखकर अँधेरे में अपना शिकार खोजा करते हैं । इन्द्र धनुष को अनन्त नाग कुल के मुकुटों को मणियों की प्रतिच्छवि माना गया है । जो सप्तरंग का रूप धारण कर लेती है । सर्प अपनी केंचुली पुरानी होने पर बदल देते हैं । केंचुली के लिए कहा जाता है कि इसे रखने वाला धनवान हो जाता है । विद्यार्थी तो सपेरों से केंचुली लेकर अपनी पुस्तकों में रखते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि इससे विद्या प्राप्त होती है । नागों के फणों में लगी मणियों के चमकने का साक्ष्य मत्स्य पुराण में प्राप्त होता है ।

श्रीमद्भागवत में कालि नाग के विषय में जो उल्लेख मिलता है ।[1] उसके आधार पर ज्ञात होता है कि ग्रीष्म की प्रखर धूप से पीड़ित गोपालकों ने जैसे ही यमुना के जल का पान किया वैसे ही वे सब अचेत होकर गिर गये । कालि-नाग के विष से यमुना का जल जल सदा खौलता रहता था । उस पर से उड़ान भरने वाले खग-विहग भी दग्ध होकर गिर जाते थे । और मर जाते थे । समग्र जीव सृष्टि कालिनाग से प्रताड़ित थी । वामन रूप श्री कृष्ण को एक बार उसने नागपाश में जकड़ लिया था परन्तु उनके द्वारा देह विराट किये जाने पर उसके अंग -अंग टूटने लगे थे । कृष्ण ने वज्रपात से उसके फण पर प्रहार करके मृतप्राय कर दिया । नाग रानी का आर्तनाद सुनकर श्रीकृष्ण ने उसे मुक्त करके समुद्र के रमणक द्वीप में चले जाने का आदेश दिया । यमुना से विदा होने के पूर्व नाग ने प्रभु की [कृष्ण] नाना प्रकार केउपहारों के द्वारा सेवा भक्ति की ।

---

1. श्रीमद भागवत, अध्याय - 16

6. कला में यक्ष और नाग

प्राचीन भारतीय कलाओं में मूर्तिकला का विशिष्ट स्थान है। मूर्तिकला से हमारी धार्मिक (आध्यात्मिक) एवं सांस्कृतिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं। लौकिक आदर्शों के संवर्द्धन के साथ ही मानव जीवन के पुरुषार्थ (धर्म, मोक्ष, अर्थ, काम) का उत्कर्ष ही मूर्तिकला का उद्देश्य रहा है। यद्यपि मूर्तिकला का सम्बन्ध धार्मिक पक्ष से ही जोड़ा जाता रहा है परन्तु भारतीय मूर्तिकला में जीवन के भौतिक पक्षों को भी स्थान दिया गया है।

प्राचीन भारतीय कला एवं स्थापत्य में विविध विषयों का अंकन किया गया है। कलाकारों ने जिस प्रकार की कला कृतियों का सृजन अपनी प्रतिभा द्वारा किया है वह अपने आपमें अद्वितीय है। कला को विभिन्न धर्मों द्वारा विशेष सम्बल प्राप्त हुआ। कला शिल्पियों ने समाज को जिस रूप में देखा है, उसे उसी रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। कला के माध्यम से विविध परम्पराओं का स्वरूप परिलक्षित होता है। भारतीय कला का सम्बन्ध मात्र धार्मिक जीवन से ही नहीं, बल्कि आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन से भी है। कला द्वारा ही किसी युग की संस्कृति का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। भारतीय कला में अनेकता में एकता पिरोयी गयी है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों के ज्ञान के बिना, उस समय की कला का पूर्ण आशय सुस्पष्ट नहीं हो पाता है।

किसी भी प्रतिमा के भाव प्रदर्शन की विविधता के कारण ही उसके सम्मुख जाने पर स्थायी भाव के अनुसार ही रसास्वादन प्राप्त होता है। कला शिल्पियों में आत्मत्याग की इतनी प्रबल भावना थी कि उन्होंने कहीं भी अपना नाम नहीं दिया। यक्ष मूर्तियां भारत के विभिन्न स्थलों से मिली हैं।

इन कलाकृतियों में एक कलात्मक अभिव्यक्ति है । विभिन्न संग्रहालयों में संरक्षित इन प्रतिमाओं का कला की दृष्टि में महत्वपूर्ण स्थान है । ये कलाकृतियाँ निम्न-लिखित है :-

1. मथुरा के परखम ग्राम से एक यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है । प्रतिमा पर एक लेख भी है, जिसे (म) णिभद्र (अर्थात् मणिभद्र) नाम दिया गया है । यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है ।

2. सतना जनपद के भरहुत से कुबेर की प्रतिमा मिली है, जो भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संरक्षित है ।

3. इलाहाबाद के कौशाम्बी स्थान से एक यक्ष की मूर्ति उपलब्ध हुई है । यह इलाहाबाद संग्रहालय में है ।

4. वाराणसी के राजघाट से प्राप्त त्रिभुज यक्ष की प्रतिमा कला की दृष्टि से विशिष्ट है । यह भारत कला भवन वाराणसी में है ।

5. इलाहाबाद के भीटा स्थल से एक यक्षमूर्ति प्राप्त है । यह सम्प्रति लखनऊ संग्रहालय में है ।

6. मथुरा के गोसनाखेरा स्थान से घण्टाकर्ण नामक यक्ष की मूर्ति मिली है, जो मथुरा संग्रहालय में है ।

7. मोरेना (म०प्र०) जनपद के पधावली स्थल से कुबेर के साथ ऋद्धि की मूर्ति प्राप्त हुआ है । यह इस समय ग्वालियर संग्रहालय में है ।

8. मथुरा से कुबेर के साथ ब्राह्मण देवसमूह की प्रतिमाएँ प्राप्त हैं, जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं ।

9. शिशुपाल गढ़ (उड़ीसा) से अनेक यक्ष प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं ।

10. बरेली के अहिच्छत्र स्थल से यक्ष की मूर्ति मिली है, जो राज्य संग्रहालय लखनऊ में है ।

11. इलाहाबाद के कौशाम्बी से यक्ष की टेरा कोटा प्रतिमा प्राप्त है, यह इलाहाबाद संग्रहालय में है ।

12. मथुरा के मनोहरपुर स्थल से कुबेर की मूर्ति उसकी पत्नियों के साथ प्राप्त हुई है, यह मथुरा संग्रहालय में है ।

13. शूर्पारक से यक्ष की प्रतिमा मिली है, जो राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में विद्यमान है ।

14. मथुरा से प्राप्त मेषश्रृंग यक्ष की मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है ।

15. सतना के भरहुत से प्राप्त अजकालका यक्ष की प्रतिमा भारतीय संग्रहालय में है ।

16. इलाहाबाद के पभोसा स्थान की कुबेर मूर्ति सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में है ।

17. जबलपुर के तेवार स्थल से दो यक्षिणियों के साथ पदमावती की प्रतिमा प्राप्त हुई है ।

18. मथुरा की मोगरापाणि यक्ष की मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में है ।

19. ग्वालियर के पवाया स्थान से मणिभद्र की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो पुरातात्विक संग्रहालय ग्वालियर में विद्यमान है ।

20. मथुरा के भूतेश्वर से प्राप्त यक्षिणी मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है ।

21. देवास (म0प्र0) के गान्धार वाल से गोमुख यक्ष की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो ग्वालियर संग्रहालय में है ।

22. मथुरा के महोली स्थान से प्राप्त कुबेर की मूर्ति मथुरा संग्रहालय में है ।

23. सतना के भरहुत से प्राप्त चुलकोका की मूर्ति भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में है ।

24. वाराणसी के सारनाथ से प्राप्त भरवहक्ख यक्ष की प्रतिमा सम्प्रति सारनाथ संग्रहालय में है ।

25. सोपारा (महाराष्ट्र) एक यक्ष की मूर्ति प्राप्त हुई है ।

26. सतना के भरहुत से चन्द्रायक्षिणी प्राप्त है जो भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में है ।

27. सतना के नागौद स्थान से (शाल भंजिका) यक्षिणी की मूर्ति प्राप्त है । यह इलाहाबाद संग्रहालय में है ।

28. गया जनपद के बोध गया स्थान से एक यक्षिणी की प्रतिमा प्राप्त हुई है।

29. कानपुर के मूसानगर स्थल से प्राप्त कुबेर की मूर्ति राज्य संग्रहालय लखनऊ में है ।

30. ललितपुर के देवगढ़ से चकेश्वरी यक्षिणी की प्रतिमा प्राप्त हुई है ।

31. मथुरा संग्रहालय में व्याल यक्ष की एक प्रतिमा है ।

32. प्रतापगढ़ से एक यक्ष की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो इलाहाबाद संग्रहालय में है ।

33. भोपाल के भोजपुर से भारवाहक यक्ष की मूर्ति प्राप्त हुई है।

34. सतना जनपद के भरहुत से कुबेर की प्रतिमा प्राप्त हुई है । यह इस समय कलकत्ता संग्रहालय में है ।

35. भुवनेश्वर, उड़ीसा राज्य संग्रहालय में कुबेर की मूर्ति पत्नी एवं उसके अनुचरों के साथ है ।

36. मथुरा से गोमुख यक्ष की प्रतिमा प्राप्त हुई है । यह मथुरा संग्रहालय में है ।

37 गुन्टूर जनपद के नागार्जुन कोण्डा से प्राप्त यक्ष मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है ।

38. भरतपुर के नोह ग्राम से एक यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है ।

39. मथुरा से एक यक्षिणी की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो इस समय मथुरा संग्रहालय में है ।

40. ललितपुर के देवगढ़ से भाजिना -। यक्षिणी की मूर्ति प्राप्त हुई है ।

41. मथुरा के ग्रोंग- का नगरा स्थान से एक यक्ष मूर्ति मिली है ।

42. औरंगाबाद के पीतलखोरा स्थल से प्राप्त यक्ष प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है ।

43. कुरूक्षेत्र के आमीन स्थल से एक यक्ष की मूर्ति मिली है ।

44. सतना के पतियान दे मन्दिर से अम्बिका यक्षिणी की मूर्ति प्राप्त हुई है। यह सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में है ।

45. विदिशा में बेस एवं वेतवा ﴾ वेत्रवती ﴿ के संगम से एक यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है ।

46. शिवपुरी ﴾ म0प्र0﴿ के तेराही स्थल से प्राप्त कुबेर की मूर्ति ग्वालियर संग्रहालय में है ।

47. पटना से प्राप्त एक यक्ष मूर्ति सम्प्रत्ति भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में है ।

48. विदिशा के सांची स्तूप -1 के पश्चिमी द्वार पर सुतपणि यक्ष का अंकन प्राप्त होता है ।

49. चित्तौर (राजस्थान) जनपद के रानामालिया स्थान से जैन कुबेर की मूर्ति मिली है ।

50. रायपुर (म0प्र0) के सिरपुर से जाम्भल यक्ष की मूर्तियां प्राप्त हैं, जो पुरातात्विक संग्रहालय सागर विश्वविद्यालय में सुरक्षित है ।

51. नालन्दा से प्राप्त जांभल मान्दल प्रतिमा पटना संग्रहालय में है ।

52. भरतपुर (राजस्थान) के कटरा से प्राप्त कुबेर की प्रतिमा राजपूताना संग्रहालय में है ।

53. मथुरा से प्राप्त मातृकलाओं के साथ कुबेर की मूर्ति प्राप्त हुई हो जो मथुरा संग्रहालय में है ।

54. जोधपुर (राजस्थान) के हथमी स्थ से प्राप्त गोमुख यक्ष मूर्ति राजपूताना संग्रहालय अजमेर में है ।

55. पटना के दीदारगंज से प्राप्त यक्षिणी जो पटना संग्रहालय में है ।

56. नालन्दा से प्राप्त हारीती (कॉस्य) मूर्ति जो पटना संग्रहालय में है ।

57. सतना के भरहुत से सुदसना यक्षिणी की मूर्ति प्राप्त हुई है ।

ये सभी मूर्तियां महाकाय रूप में प्राप्त होती हैं । इन विशाल प्रतिमाओं की स्थापना उन्मुक्त वातावरण में बड़ी जाती थी । इनकी मॉस पेशियों को देखने से इनके वृहत शरीर का आभास हो जाता है । कर्ण में बड़े- बड़े कुण्डल, गले में कंठे भुजाओं पर भी आभरण धारण किये । ये मूर्तियाँ भुजाओं

पर भी आभरण धारण किये ये मूर्तियां कला जगत के लिए विशेष गौरव की रही हैं ।

यक्ष यक्षिणी मूर्तियों की अनुकृति पर ही बाद में जैन हथियारों, महात्मा बुद्ध की वृहत प्रतिमाएं निर्मित की गयीं । अशोक युगीन प्रारम्भिक बौद्ध कला में दिशाओं के रक्षक के रूप में यक्षों को वर्णित किया गया है । कलाकारों ने प्रारम्भ से ही अपनी कलाकृतियों के माध्यम से समाज को एक नवीन चेतना प्रदान करने का अनवरत प्रयास किया । भारत के प्राचीन इतिहास में कला का एक अपना अलग ही स्थान है । यदि इतिहास की दृष्टिसे कलाकृतियों का सम्यक अवलोकन किया जाय तो तत्कालीन समाज की गतिशीलता का परिज्ञान ज्ञात होता है कि कला में शिल्पियों की आस्था का प्रतिबिम्ब झलकता रहता है । कला द्वारा पुरातन गौरव ज्ञात होता है । कला काप्रश्रय देकर उसके उन्नयन सम्बल का कार्य किया गया। मौर्य कालीन कला का अस्तित्व दो रूपों में मिलता है । प्रथम राजकीय कला है तो द्वितीय है - लोक कला । कुमार स्वामी अशोक कालीन कला के तराशने की परम्परा और आभा को तकनीकी रूप से अद्वितीय मानते हैं । राजकीय कला केअतिरिक्त लोक कला के अन्तर्गत विभिन्न स्थानों से प्राप्त यक्ष यक्षिणियों की उपासना होती थी, जिनकी मूर्तियां लोक कला की धरोहर मानी जाती हैं ।

किसी भी युग की कला के सम्यक् अध्ययन द्वारा तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक गतिशीलता का ज्ञान कर लिया जाता है । आज जिस प्रकार प्रत्येक ग्राम में लोक देवी देवताओं की उपासना प्रचलित है उसी मौर्य

काल में भो इनके अनुयायी प्रारम्भिक काल में भी विद्यमान थे ।

पटना में दोदारगंज को यक्षिणी मौर्य लोक कला का अद्वितीय उदाहरण है । इसमें यक्षिणी के सौन्दर्य का अंकन किया गया है । ऊर्ध्व भाग में कोमलता तथा हल्कापन है । मौर्य कालीन लोक कला केवल यक्ष यक्षिणियों के स्वरूप को सीमा तक हो नबँधकर विविध प्राकृतिक दृश्यों में भी परिलक्षित हुई ।

मौर्य कालोन यक्ष यक्षिणियाँ दोर्घकाय है । मौर्य कला के अनन्तर शुंग कालीन कला का अभ्युदय होने लगता है । वर्णनात्मक मूर्ति (शिल्प) कला के आर्विभाव के कारण लोक कथाओं का चित्रांकन अवाध गति से होता रहा । शुंग कालीन लोक कला यथार्थवाद के स्वरूप में प्रचुर मात्रा में मुखरित हुई । शुंगकाल में लोक धर्म को अभिव्यक्ति स्पष्टत: दिखाई देती है ।

पीपल के वृक्ष का चित्रण सम्बोधि के प्रतीक के रूप में किया गया है । अनेक भिक्षु बोधि वृक्ष की उपासना में संलग्न दिखाये गये हैं । शुंग कालीन प्रसिद्ध स्तूप सांची के तोरण द्वार पर चर्तुमाहाराजिक देवताओं का अंकन है । यक्ष के निवास स्थान के लिए भवनम् चैत्य प्राप्त होता है । चैत्य को पाली में चेतिय नाम से जाना जाता है । प्राकृत में चेय शब्द प्राप्त होता है । कभी - कभी आयतन , जिसका प्राकृत रूपान्तर आयायन है, का उल्लेख भी मिलता है । इसकी स्थिति नगर के वाह्य भाग में होती थी । चैत्य कभी कभी कुन्ज या किसी पर्वत या किसी घाटपर बने होते थे । पूर्णभद्र एवं मोगरा पाणि, इन्द्र के शिखर यक्ख माने गये हैं । राजगृह के निकट यक्ख सुचि लोमा चैत्य का उल्लेख संयुक्त निकाय[1]

1• संयुक्त निकाय, यक्ख सुत्त, किंडर्ड सेइंग -1, पृ0 264

में प्राप्त होता है । यक्ष मन्दिर एवं प्रतिमा का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र में सन्दर्भ मिलता है ।[1]

पद्मपाणि, वज्रपाणि तथा मैत्रेय आदि बोधिसत्वों का नाम विशेष रूप से विवृत किया गया है । प्रारम्भिक बौद्ध परम्परा दो यक्षों से युक्त बोधि वृक्ष द्वारा प्रस्तुत की गयी है । दोनों यक्षों के हाथ में एक - एक विकसित कमल है या एक प्रतीक [चक्र] द्वारा या कौरी के साथ यक्ष को वर्णित किया गया है । उसके हाथ में एक कमल है । यक्षों को साँची में संरक्षक स्वरूपों में दर्शाया गया है । इस प्रकार अब हाथ में एक पद्म का वर्णन पद्मपाणि के विशेषण के रूप में किया जाता है । कालान्तर में बोधिसत्व पद्मपाणि, जो अवलोकितेश्वर का ही एक स्वरूप है, को हम बुद्ध पर एक छोटे अनुचर की तरह पाते हैं । पद्मपाणि स्वतन्त्र बौद्ध देवता के रूप में है । ऐतिहासिक एवं मूर्ति कला से सम्बन्धित माना जा सकता है । गुडि मालम लिंगम को प्राचीन शिव " प्रतिमा, साँची एवं भरहुत के यक्ष एवं यक्षिणी, न्यग्रोध, उदम्बर या अश्वत्थ वृक्षों की पहचान विष्णु, शिव, शंकर, कार्तिकेय के साथ की जा सकती है । इन सभी यक्षों का नामोल्लेख महामयूरी सूची में भी प्राप्त होता है ।

पवाया में मणिभद्र प्रतिमा की स्थापना के सम्बन्ध में साक्ष्य मिलते हैं ।[1] साक्य वर्धन मन्दिर का भी साक्ष्य प्राप्त होता है । कभी - कभी यक्षिणियोंकेकुछ अंकनों में एक पैर उठा हुआ है, वृक्ष के एक तने पर विश्राम पा रहा है । विविध

---

1. गारडे, एम०बी०आर्कि० सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिपोर्ट 1914-15 भाग एक पृष्ठ 21 ; दा साइट आफ पदमावती 1915-16 पृ० 105-28

उच्चित्रणों एवं चित्रकलाओं का अंकन वृक्ष के नीचे पूर्ण आकृति में नहीं है । दो हाथ या अर्द्धशरीर डालियों से प्रकट होते हुए चित्रण भरहुत कला में प्राप्त होते हैं । वॉगेल[1] द्वारा भरहुत स्तूप पर अंकित यक्षिणियों का साक्ष्य दिया गया है । गंगा यमुना तथा मकर आकृतियाँ द्वारों पर है ।

चैत्य शब्द " चि" चयने धातु से निकला है उसमें प्रस्तर या ईंट चिनकर भवन निर्माण किया जाता है । चम्पा स्थित पूर्ण भद्र के एक चैत्य का उल्लेख और पापाति का सूत्र द्वारा प्राप्त होता है, जिसमें चबूतरे भी बने थे ।[2] कुछ यक्षों द्वारा भवनम् पर विश्राम किये जाने का भी साक्ष्य प्राप्त होता है । चैत्य का उल्लेख देववृक्ष में किया गया है ।[3]

प्राचीन काल में राजगृह में जारा या हरीती (यक्षिणी), के मन्दिर के स्थित होने का साक्ष्य प्राप्त होता है । ए0के0 कुमारस्वामी के अनुसार अशोक युगीन आरम्भिक बौद्ध कला कृतियों में यक्षों को दिशा - रक्षक के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी । मणिभद्र मन्दिर का उल्लेख कथासार, सागर में भी प्राप्त होता है । शुंग कालीन स्तूप पर इन यक्षों का नाम मिलता है-

---

1. वागेल, ए0एस0 आ0ई0ए0आर0 - 1906-7 पृ0 146
2. लियोमान, ई0 दास, औपापतिका सूत्र 8,2,1883
3. महाभारत, आदिपूर्व 150/33

1. गंगिता यखो ।
2. सुचिलोमा यखो ।
3. कुपिरो यखो ।
4. अजाकालको यखो ।
5. सुदसना यखो ।
6. काडा (काण्डा) यखो ।
7. सिरिमा देवता
8. कुलाकोका देवता ।
9. महोकोका देवता ।

उपर्युक्त नामों के उल्लेख से यह उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन लोक धर्म इनका विशेष अस्तित्व था, क्योंकि भरहुत कालीन शिल्पी इनके नामों से पूर्ण परिचित थे ।

यक्षिणियों के विषय में उल्लेख मिलता है कि वे पूर्व जन्म दासी होती थीं । एक उल्लेख के अनुसार नगर -द्वारों पर दासी स्त्री पुर्नजन्म लेने के बाद यक्षिणी के रूप में रहती थी । वैशाली यक्ष द्वारा संरक्षण पूर्ण जीवन का उल्लेख भी मिलता है।[1]

कथा सरित्सागर[2] में मणिभद्र के मन्दिर का उल्लेख आया है । यक्ष का एक आवश्यक तत्व प्रस्तर भूमि है । इसके साथ ही साथ पूजा स्थल को पवित्र वृक्षं के नीचे यक्षों के लिए स्थापित किया जाता है । गया में यक्ख सुचिलोमा का भवनम् विशेष रूप से एक प्रस्तर स्थल की भाँति वर्णित किया गया है । इसी

---

1. महावंश अध्याय - 10
2. कथा सरित्सागर अध्याय - 13

पर महात्मा बुद्ध ने विश्राम किया था । इसमें तांत्रिक शब्दों का प्रयोग किया गया है । चार प्रस्तरों पर टिके हुए एक चौकोर प्रस्तर के अर्थ में भाष्य[1] में साक्ष्य प्राप्त होता है । एक सुरचित मन्दिर में केवल पूजा स्थल (वेदिका) ही नहीं थे, इस प्रकार का उल्लेख पूर्णभद्र चैत्य के रूप में प्राप्त होता है ।

चैत्यों अथवा लघु कुन्जों (सरोवरों) में से स्थानीय देवताओं की संस्कृति के विषय में निम्न परिज्ञान मिलता है :-

1. साल वृक्षों का कुन्ज का सम्बन्ध माला से माना जाता है । परिनिर्वाण ने इस स्थान को प्राप्त किया था ।
2. महात्मा बुद्ध को वज्जियानों से कपाला चैत्य प्रदान किया था । वैशाली के लिच्छवियों का उल्लेख वाटर्स[2] ने भी किया है ।
3. वज्जियान (वैशाली के लिच्छवि) चैत्य महात्मा बुद्ध का संकेत करते हैं ।[3]
4. सुपातित्थ का उल्लेख पिटक में प्राप्त होता है । महात्मा बुद्ध ने यहाँ प्रथम प्रदर्शन किया था ।

कला एवं शिल्प के क्षेत्र में प्राचीन काल के शिल्पियों ने नागों के अनेक रूपों को प्रस्तरों पर उत्कीर्ण किया । नागों के अनेक रूपों को प्रस्तरों पर उत्कीर्ण किया गया है । जन्तु तथा मानव के मिश्रित रूप में प्रदर्शित किया गया है ।

---

1. संयुक्त निकाय, यक्ख सुत्त अध्याय 10 फिंडर्ड सेइंग पृ0264
2. वाटर्स, आन युवान च्वांग 11, 78
3. महापरि निर्वाण, सुत्तन्त, अंगुत्तर निकाय 7, 19

जैन धर्म कला में पार्श्वनाथ प्रतिमा में नाग छत्र प्राप्त होता है । जैन अनुयायिओं ने पार्श्वनाथ के सिर पर नाग आकृति उत्कीर्ण कर ‖ स्थित कर ‖ नाग को महत्व प्रदान किया । जैन धर्म के साथ ही साथ बौद्ध कला में भी नागों का अंकन मिलता है । बौद्ध कालीन कलाकारों ने नागों के तीन स्वरूप का अंकन करने का प्रयास किया है :-

1· मानव रूप

2· जन्तु रूप

3· मिश्रित रूप

जल में इलापद्रा नाग को सर्प के रूप में दिखाया गया है, उसे भगवान बुद्ध ने दीक्षा दी थी । जल के एक भाग में थोड़ी दूर पर मिश्रित रूप में दिखाया गया है, जिसके नीचे का भाग सर्प का तथा ऊपरी भाग में मनुष्य के अर्द्धशरीर रूप में प्रदान किया गया है । नागों का अंकन जातकों में भी मिलता है । मिग ‖ मृग‖ हंस, किन्नर, दशरथ, यवन अकोय, विधुर के साथ ही नाग अंकन भी मिलता है । अजन्ता के बिहारों की चित्रकारी से स्पष्ट होता है कि उस पर भी नाग-मूर्ति का अंकन किया गया है । मन्दिर के द्वारा स्तम्भों पर पुष्प लता, नाग मिथुन एवं मकरों पर आरूढ़ स्त्रियों की आकृतियां कुशलता पूर्वक उत्कीर्ण हैं ।

मुचिलिंद नाग राज की प्रसिद्ध मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय में विद्यमान है । नागराज मुचिलिंद नागराज को पॉच फणों से युक्त समलंकृत है । मुचलिंद नाग महात्मा बुद्ध को सुरक्षा करने के प्रतीक रूप में दर्शाया गया है । अपने फण द्वारा उसने पूर्ण आसन को ढक लिया है । वेदिका, पादुका की भी उह रक्षा करता हुआ

शुंग कालीन कला शिल्पियों ने भरहुत स्तूप की वेदिका पर नागों का अंकन किया है । तीनों रूपों का अंकन यहाँ पर एक साथ प्राप्त होता है । इसमें नाग का नामोल्लेख भी प्राप्त होता है।[1] सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस अंकन में नागराज को एक चक्रवर्ती नरेश की भाँति सम्मान दिया गया है ।

भरहुत के दक्षिणी तोरण स्तम्भ पर दिग्पाल के रूप में नाग को प्रदर्शित किया गया है उस पर अंकित लेख में चक्रवाक नागराज का नाम मिलता है ।[2] जिसके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भरहुत के शिल्पियों को यह नाम पूर्णतः विदित था । इससे नागों की लोक प्रियता पर प्रकाश पड़ता है । जीवन एवं मृत्यु से हटकर एक नव विचार का अंकन विविध नाग अंकनों में मूर्ति कलाओं में व्यक्त किया गया है । इन मूर्ति कलाओं में नागों के मानवीय स्वरूप का चित्रण किया गया है ।

भरहुत कला में दो नागराज एवं नागरानी को वृक्ष की उपासना करते हुए दर्शाया गया है । अमरावती गोलाकार फलक पर नागराज तथा नाग रानी की उपासना का चित्रण प्राप्त होता है । नागराज एवं नागरानी के साथ मनुष्य भी उपासना करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं । नागों को वृक्षों के मूल के मध्य निवास करते हुए चित्रित किया गया है । नाग विषैले सर्प की भाँति अनेक फणों से युक्त दर्शाये गये हैं ।

1· इरापटो नाग राजा भगवतो वदते ।"

2· चकवको नाग राजा ।

नाग ऐरापत पूरे परिवार के साथ वोधि वृक्ष की पूजा करते हुए दर्शाया गया है । ऐरापत के मानव रूप मेंचित्रित मस्तक पर विविध सर्प फणों का अंकन है । मणिनाग मन्दिर के विषय में उल्लेख महाभारत में भी प्राप्त होता है।[1] मथुरा कला में नाग प्रतिमाएं जल सरोवरों के पास प्राप्त की गयी हैं । हमारा धर्म,कर्म,साहित्य,पुरातत्व, इतिहास, नागों से जुड़ा हुआ है ।

राजगृह में मणि-भण में मणिनाग देवता की पूजा का स्थान है । पटना घाटी में स्थित इस स्थान पर आज भी मणिनाग देवता की उपासना होती है। नागा चन्द्र नाम से प्रसिद्ध महात्मा बुद्ध की एक मुद्रा में पंच शीश नाग के सूर्य की किरणों के ताप से अपने फण द्वारा बुद्ध को बचाने का चित्रण अतीव जीवन्त है ।

मथुरा उत्खनन से प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि नागराज दधिकर्ण का वहाँ एक मन्दिर था, जहाँ से सिर विहीन नागराज प्रतिमा ज्ञात हुई है । सम्प्रति यह मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है । मथुरा के पास सोंख नामक स्थान से पुरातत्व विभाग की उत्खनन में उन्नीस नागों की एक मूर्ति प्राप्त हुई है । इसके बीच में सप्तफन धारी नागराज सिंहासनारूढ़ है। पास में नाग- नागिनी हैं । मथुरा से दस मील दक्षिण में छड़गावं से सात फीट नौ इंच की ऊँची नाग मूर्ति पुरूषाकार में सात फणों से युक्त प्राप्त हुई है । दायां हाथअभय मुद्रा में बाये हाथ में चषक धारण किये हैं । मथुरा संग्रहालय में अनेक नाग मूर्तियां हैं ।

इस प्रकार नाग कला मे भारत के धर्म साहित्य, कला और लोक संस्कृति के क्षेत्र में तीन सहस्र वर्षों से अधिक समय से महत्वपूर्ण स्थान बना रखा है । यक्षों एवं नागों का उल्लेख अन्यत्र भी प्राप्त होता है ।

उ प सं हा र

प्राचीन भारत की सांस्कृतिक परम्परा में धर्म का निःसन्देह विशिष्ट स्थान रहा है। परम्परागत अनेक शोधों में, उदाहरण के लिए आदर्शवादी एवं भौतिकवादी इतिहास परम्पराओं में, धर्म या भौतिक संस्कृति को पृथक रूप सेसर्वोपरि स्थान दिया जाता है, जो एक एकांगी प्रक्रिया है। सैद्धान्तिक पुरातत्व विशेषकर उत्तर प्रक्रियात्मक पुरातत्व (Post processual Archaeology) में अब इस पक्ष पर बल दिया जा रहा है कि अतीत की व्याख्या में सभी बौद्धिक द्विभाजन या द्वन्दों (Dichotomy) से ऊपर हमें उठने की आवश्यकता है। आदर्श एवं भौतिक (Ideal and Material) के परम्परागत द्वन्द ने भारतीय इतिहास की व्याख्या को जटिल बनाने के साथ ही साथ संभ्रान्ति से आवृत्त किया है।

प्रस्तुत शोधकार्य इस मान्यता पर अवलम्बित है कि धर्म एवं भौतिक संस्कृति को पृथक रूप से देखने के बजाय उनकी पारस्परिकता एवं सम्पूरकी पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रथम अध्याय में यह विचार रखा गया था कि "धर्म, विशेषकर उसका आनुष्ठानिक पक्ष, ऊपर से आरोपित एवं अपरिवर्तनशील तत्व नहीं है, बल्कि वह गतिशील सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं से घनिष्ठता से जुड़ा है। धर्म समाज को एवं समाज धर्म को प्रभावित करता है; दूसरे शब्दों में धर्म सामाजिक जीवन को नियंत्रित करता है तो वहीं समाज प्रायः धर्म को अपने पुनरुत्पादन एवं अभिव्यक्ति के लिए विचारधारा (Ideology) के रूप में प्रयोग करता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लघु स्थानीय देवों विशेषकर यक्षों एवं नागों का अध्ययन इस शोध कार्य में प्रस्तुत किया गया है जैसा किप्रथम अध्याय में वर्णित किया गया है। इस शोध कार्य का प्रमुख लक्ष्य है §1§ यक्ष सदृश स्थानीय लघु देव समूह की उत्पत्ति विषयक व्याख्या, §2§ प्रथम सहस्राब्दी ई0पू0 के साहित्यिक एवं कला विषयक साक्ष्य के आधार पर यक्ष एवं नागों के स्वरूप की समीक्षा, §3§ समसामयिक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में उनका महत्व एवं छठी शताब्दी ई0पू0 के धार्मिक सामाजिक आन्दोलन में यक्ष परम्परा का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में योगदान।

यहाँ यक्षों एवं नागों के अध्ययन में साहित्यिक एवं कला विषयक स्रोतों की सहायता ली गई है। तथापि, उनका एक विशेष दृष्टिकोण से अवलोकन किया गया है, जिसकी प्रेरणा पुरातात्विक सिद्धान्तों एवं मानव वैज्ञानिक तथ्यों से गृहीत है।

सामाजिक परिवर्तन मात्र तकनीकी एवं वातावरण के परिवर्तनों द्वारा पूर्णत: व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है, इसके लिए व्यवहार के जटिल §आंतरिक§ पक्ष को सम्यक् समझने की आवश्यकता है। मानव व्यवहार के इसी पक्ष, विशेषकर सामाजिक सम्बन्धों की गतिशीलता का अध्ययन उत्तर प्रक्रियात्मक पुरातत्व § Post-processual Archaeology § में किया गया है। इसकी मान्यता इस तथ्य पर आधारित है कि भौतिक संस्कृति की संस्थापना अर्थपूर्ण ढंग से होती है। भौतिक अवशेष एक ओर तो सामाजिक सम्बन्धों का सृजन करते हैं तो दूसरी ओर उन्हें प्रदर्शित भी करते हैं। सामाजिक सम्बन्ध, राजनैतिक विरचन (Political Formation) तथा विचारधारा (Ideology)की समीक्षा के बिना ऐतिहासिक

परिवर्तन की व्याख्या अपूर्ण रहती है।

डैनी मिलर ने जिस विचारधारा के प्रतिमान का उल्लेख किया है, और जिसका सम्बन्ध इस शोध प्रबन्ध से है, उसके अनुसार शिल्प तथ्यों (उदाहरणार्थ मूर्ति, मुद्रा, मृद्भाण्ड, भवन आदि) के द्वारा समाज अपनी अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है। यह अभिव्यक्ति संगोपन की योजना (Strategy of Concealment) से प्रेरित रहती है। उदाहरण के लिए एक सबल वर्ग दूसरे (निर्बल) वर्ग के अस्तित्व को नकारते हुए अपनी अभिव्यक्ति किसी विशेष रूप में सम्मुख रखने का प्रयत्न करता है। यह तथ्य भारतीय सामाजिक-धार्मिक इतिहास में विशेष प्रासंगिक है।

भारतीय सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक संरचना तथा आजीविका को सम्यक् समझने के लिए एक संदर्भीय प्रतिमान का यहाँ प्रयोग किया गया है, जो पारिस्थितिकीय सम्पूरकी के सिद्धान्त पर आधारित है। इस प्रतिमान के अनुसार संसाधनों की प्रतियोगिता के फलस्वरूप पृथक विशिष्ट वर्ग अस्तित्व में आते हैं, जो सामाजिक विभेद के बावजूद आर्थिक क्षेत्र में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। यह विशिष्ट वर्ग अपनी सामाजिक पहचान बनाने के लिए भौतिक एवं अभौतिक ढंगों (Styles) का प्रयोग करते हैं। भौतिक ढंग में वेशभूषा, टोटम चिन्ह, अन्य कलात्मक अभिव्यक्ति आवास व्यवस्था आदि आते हैं। अभौतिक ढंग (Styles) में विचारधारा (Ideology) का प्रमुख स्थान है, जिसके अन्तर्गत वे सभी तत्व आते हैं, जिनको आमतौर पर धर्म या मिथक (Mythology) की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक

सम्बन्ध से जुड़े विविध वर्गों के आपसी सम्बन्ध सदा समभित नहीं होते हैं। उनमें असंतुलन की संभावना भी अधिक होती है। इस असंतुलन द्वारा वर्गों की पृथक पहचान के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था में स्थायित्व एवं निरन्तरता भी आती है।

कला एवं साहित्य में यक्षों एवं नागों का उल्लेख प्राप्त होता है। यक्षों की मूर्तियां महाकाय निर्मित की गयी है। इनके गले में कंठे, भुजाओं पर आभरण, कर्ण में बड़े-बड़े कुण्डल के अंकन द्वारा कला शिल्पियों ने इनकी वैभव सम्पन्नता का संकेत देने का प्रयास किया है। वैदिक दीदारगंज §पटना§ की यक्षिणी मूर्ति भरहुत एवं सांची स्तूपों पर यक्षों के साथ-ही-साथ नागों का अंकन, भरहुत स्तूप पर पहचान के लिए यक्ष एवं यक्षिणियों के भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं।

नागों के जन्तु एवं मानव के मिश्रित रूप का उच्चित्रण प्राप्त होता है मुचिलिंद नागराज §इलाहाबाद संग्रहालय§ की मूर्ति के अतिरिक्त दो नाग मूर्तियाँ प्राचीन इतिहास विभाग, पुरातत्व एवं संस्कृति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संग्रहालय में भी विद्यमान हैं।

साहित्यिक स्रोतों में भी यक्षों को वृहद् शरीर से युक्त वर्णित किया गया है। महाभारत, रामायण, बौद्ध एवं जैन ग्रंथ, पुराणों, मनुस्मृति में यक्षों के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है। नागों का उल्लेख महाभारत के आदिपर्व में प्राप्त होता इनके विषय में वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध ग्रंथ एवं जैन साहित्य में भी उल्लेख मिलता है। मत्स्य एवं गणेश पुराण में भी नागों का वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद में नागों के सुंदर स्वरूप एवं उनके भयंकर कार्यों का उल्लेख मिलता है। अतिशय शक्तिशाली वासुकि जैसे अनेक नागों का सम्बन्ध रत्न (मणि) से है, ऐसा उल्लेख भी प्राप्त है। आस्तीक नाग महाभारत में विशेष रूप से वर्णित किया गया है। यक्षों एवं नागों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध था[1] क्योंकि इन दोनों का संबंध संरक्षण एवं वैभव सम्पन्नता से है।

पिछले अध्यायों में प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० में सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन तथा आर्थिक उत्कर्ष के आलोक में धार्मिक परम्पराओं की चर्चा की गयी है। स्थिति यह है कि विशेष धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक मूल्यों के आधार पर विशिष्ट सामाजिक विरचन (**Social Formation**) अस्तित्व में आ रहे थे।[2] एक ओर वैदिक धार्मिक परम्परा से जुड़ा हुआ एक सुदृढ़ सामाजिक विरचन काफी प्रभावशाली रूप में विद्यमान था, तो दूसरी ओर वैदिक परम्परा के बाहर विविध लोकधर्मों से सम्बन्धित सामाजिक संगठन प्राचीनतम काल से ही चले आ रहे थे तथा छठी शता० ई०पू० तक ऐसे अवैदिक सामाजिक विरचन की सृष्टि हो रही थी।

1- दी इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन, वाल्यूम, 10 (1987) पृष्ठ 293-94 मैकमिलन पब्लिश कंपनी न्यूयार्क, कोलियर मैकमिलन पब्लिशर्स लन्दन।

2- सामाजिक विरचन की परिभाषा एलेन महोदय ने इस प्रकार की है :

" A social formation is an empirical confugration of processes and relations between human individuals and populations through which value is exchanged and which is sufficiently bounded to possess an identifiable dynamic which ansures its independent survival and (under the right conditions) dictates the course of its transformation."

— एनवायरमेन्ट सबसिस्टेन्स एण्ड सिस्टम पृष्ठ 254, कैम्ब्रिज।

उत्तर वैदिक कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था की झलक दिखाई देती है। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग जो विशेष अधिकार सम्पन्न थे एवं जिनका उत्पादन प्रक्रिया पर नियंत्रण था, का समाज में आग्रगण्य स्थान था। वैदिक सामाजिक विरचन को विस्तारित करने के उद्देश्य से अन्य वर्णों ﴾वर्गों﴿ को आत्मसात करने की प्रचेष्टा थी। उत्तर वैदिक काल में उपर्युक्त दो उच्च वर्णों के अतिरिक्त वैश्य कोटि में उन सामान्य लोगों को समाहित कर लिया गया जिनका पशुपालन एवं कृषि कार्यों में विशेष लगाव था।[1] यद्यपि भूमिहीन शूद्र भी उत्पादन में सहयोगी थे परन्तु सामाजिक स्तरीकरण में उन्हें निम्नतम स्थान दिया गया। इन चार वर्णों में वैश्य ही मुख्य उत्पादन के लिए उत्तरदायी थे। यद्यपि उत्पादन सम्बन्धी नियंत्रण उच्च वर्गों के पास थे तथापि उत्पादन से सम्बन्धित होने के कारण तथा इस प्रक्रिया के फलस्वरूप उपार्जित धन के प्रभाव या शक्ति ﴾ Strength ﴿ पर वे अपने अधिकार के लिए संघर्षरत थे।

जैसा कि एलेन महोदय कहते हैं कि किसी सामाजिक विरचन की एक सीमा होती है क्योंकि इसके विस्तृत होने की प्रक्रिया में अन्तर्निहित सामूहिक मूल्य में बिखराव की संभावना हो जाती है।[2] अत: चारों वर्णों एवं तत्सम्बन्धित सहस्रों व्यापारिक वर्ग को मुख्य वैदिक विरचन में भलीभाँति सम्मिलत ﴾ incorporate ﴿ करने की चेष्टा की पूर्ण सफलता में कठिनाई थी। यही कारण है कि उत्तर वैदिक साहित्य में शूद्रों एवं तीनों वर्णों के मध्य एक भेद का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है, जैसा कि अध्याय दो में कहा गया है वैश्य वर्ग के अन्तर्गत उत्पादक/व्यावसायिक वर्ग भी अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील थे।

1- आर० एस० शर्मा, मैटीरियल कल्चर एण्ड सोसल फारमेशन्स इन एन्सियेंट इंडिया, मद्रास, 1983
2- एनवार्यनमेन्ट, सबसिस्टेन्स एण्ड सिस्टम, 1982.

उत्तर वैदिक काल में, विशेषत: छठी शताब्दी ई0पू0 तक आर्थिक उत्कर्ष हो रहे थे। लौह तकनिकी की सहायता से कृषि में बढ़ोत्तरी (surplus) हो रही थी एवं साथ ही नगरों का अभ्युदय हो रहा था। राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया गतिमान थी। दूरस्थ व्यापार एवं वाणिज्य की यथेष्ट उन्नति हो रही थी। सामाजिक संगठन के अतिरिक्त सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आ रहा था, जो एक नये सामाजिक विरचन के अभ्युदय में महत्वपूर्ण योगदान देता है, जैसा कि कहा गया है :

"Any dis uption ... in the circulation of ... values may cause discontinuity in the social organization, thus resulting in either new social formations or decline"[1]

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य वैदिक विरचन में विखराव आने के साथ-साथ ऐसे अन्य विरचनों की सृष्टि भी हो रही थी जो उन्मुक्त होकर सामने आने के लिए प्रयत्नशील थे। इसी दृष्टिकोण से छठीं शताब्दी ई0पू0 को एक क्रान्ति का उषाकाल माना जा सकता है। वैदिक परम्परा के विरुद्ध जो सामाजिक प्रक्रियाएँ प्रच्छन्न रूप में गतिशील थीं, उन्हें एक नये श्रमण परम्परा का समर्थन प्राप्त हुआ, जिसे हम बौद्ध धर्म के नाम से जानते हैं।

1- यू० सी० चट्टोपाध्याय , सबसिस्टेन्स वैरिबिल्टी ऐण्ड काम्पलेक्स फॉरमेशन्स इन प्रीहिस्टारिक गंगा वैली : प्राब्लम ऐण्ड प्रॉसपेक्ट । मैन ऐण्ड इनवायरमेन्ट ,वाल्यूम-12, PP. 135-152, 1988

बुद्ध के उपदेशों ने अवश्य ही उपर्युक्त क्रान्ति को पल्लवित किया परन्तु इस क्रान्ति का प्रारम्भ जनमानस, विशेषकर उत्पादक/व्यवसायिक वर्गों द्वारा हुआ प्रतीत होता है। समृद्ध व्यापारी वर्ग (Mercantile Groups) ने भी बौद्ध धर्म के विकास में सहयोग दिया एवं साथ ही अपने व्यावसायिक (Intrest के) संरक्षण के लिए बौद्ध धर्म का प्रयोग एक विचारधारा (Ideology) के रूप में किया।

इस शोध कार्य में वैदिक परम्परा के विघटन एवं बौद्ध परम्परा के उत्थान के बीच की एक आवश्यक श्रृंखला को पहचानने का प्रयास किया गया है। यह वह समय था जब कृषि के अतिरिक्त धन अर्जित करने के लिए विभिन्न साधनों की प्रधानता हुई। स्वर्णकार, धातुकार, रथकार, बढ़ई सदृश अनेक व्यवसायिकों ने श्रेणी का गठन किया। जिन संसाधनों के आधार पर ये व्यवसाय पनप रहे थे, उन पर नियंत्रण की आवश्यकता थी। इन संसाधनों की सुरक्षा भौतिक उपायों (Physical means) के अतिरिक्त वैचारिक उपायों (Ideological means) द्वारा संभव थी। ऊपर जैसा देखा गया है कि ऐसे उत्पादक वर्ग जनसाधारण से सम्बन्धित होने के साथ वंशगत निगम का रूप धारण कर रहे थे अत: संसाधनों की सुरक्षा एवं उनपर नियंत्रण के लिए जिस विचारधारा का उपयोग किया गया वह अवश्य ही लौकिक परम्परा से अनुप्राणित थी। यहीं यक्षों का महत्व स्पष्ट होता है जो न केवल देशज अनार्य परम्परा से सम्बन्धित संसाधनों के संरक्षक देवता थे बल्कि उनका संबंध आदिवासी टोटम परम्परा एवं पूर्वज उपासना से भी था। ऊपर यह विवेचित है कि स्थायी समाधान के अतिरिक्त जनप्रिय धर्म से सम्बन्धित अन्य प्रकार के अनुष्ठानों की सम्भावना रहती है, जो सांकेतिक रूप में किसी वंशगत निगम द्वारा संकीर्ण परन्तु आवश्यक संसाधन पर नियंत्रण को समर्थित करता है। अत: पूर्वज उपासना

से सम्बन्धित एवं संसाधनों के संरक्षक यक्षों का सम्बन्ध उस सामाजिक प्रक्रिया से है जिसमें वैदिक परम्परा से उनमुक्त उत्पादक/व्यवसायिक वर्ग अपनी स्वतन्त्र पहचान एवं पृथक् सामाजिक विरचन के लिए उद्यत था। यही कारण है कि यक्ष सदृश लघु देव समूह जिनका ऐसे वर्गों की दृष्टि में महत्वपूर्ण स्थान था, वैदिक परम्परा में इन§देवों§ के अस्तित्व को मानते हुए भी उन्हें निम्न कोटि में रखा गया।

लघु स्थानीय देव समूह, विशेषकर यक्ष एवं नाग का उपयोग एक नई विचार-धारा के रूप में किया गया जिसका सम्बन्ध नये सामाजिक विरचन के उत्कर्ष से था। कालान्तर में शक्तिशाली बौद्ध विचारधार ने उसी उद्देश्य की सफलता के लिए इन लौकिक धर्मों को आत्मसात् कर लिया।

सहायक ग्रंथ-सूची

मूलग्रन्थ

अथर्ववेद — संपादक, आर० रौथ एवं डब्लू डी० ह्विटने, बर्लिन, 1856; संपादक, श्रीपाद शर्मा औंधनगर 1938 सायण भाष्य सहित, संपादक पं० शंकर पाण्डुरंग, 1895 ।

अंगुत्तर निकाय — आर० मोरिस एवं ई० हारडी खण्ड-5 लन्दन, 1885-1910 ।

अष्टाध्यायी — पाणिनि, निर्णय सागर प्रेस, 1929 ।

अमरकोष — (संपादित) देवदत्त तिवारी वाराणसी, 1883 ।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र — सुदर्शनाचार्य की टीका सहित, मैसूर गवर्नमेन्ट संस्कृत लाइब्रेरी सीरीज ।

अर्थशास्त्र — (संपादित) आर० शाम शास्त्री, मैसूर 1909, 1929 ।
(संपादित एवं अनुवादित) आर० पी० कांगले, बम्बई, 1960-65 ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र — हरदत्त की टीका ।

आवश्यक सूत्र — भद्रबाहु भाष्य सहित, सूरत, 1928 -32 ।

ऐतरेयी आरण्यक — ए० बी० कीथ द्वारा अनुवादित, आक्सफोर्ड, 1909 ।

औपपातिका सूत्र — घासीलाल व्याख्या सहित, राजकोट, 1959 ।

कथासरित सागर — सोमदेव (अनुवादित) सी० एच० टाने ।

काश्यपसंहिता — (संपादक एव अनुवादित) सत्यपाल भिषगाचार्य वाराणसी, 1953 ।

कादम्बरी — बाणभट्ट (संपादित) रामचन्द्र काले, बम्बई ।

गणेश पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर ।

जैमिनीय ब्राह्मण — (संपादित) रघुवीर एवं लोकेश चन्द्र, नागपुर, 1954 ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण: शाम शास्त्री, मैसूर, 1921 ।

तैत्तिरीय संहिता: श्रीपाद शर्मा, औंध नगर, 1945, कलकत्ता, 1854 ।
(संपादित) एस० डी० सतव लेकर, सूरा 1957, ।

दीघ निकाय — : संपादक, रीज डेविड्स और ई० कार्पेन्टर, लन्दन, 1890-1911 ।
हिन्दी अनुवाद, राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ, वाराणसी ।

भागवत पुराण	श्री धर टीका सहित कलकत्ता ।
मारकण्डेय पुराण	गीता प्रेस गोरखपुर ।
मेघदूत	{संपादित और अनुवादित} वी0 एस0 अग्रवाल बम्बई ।
मनुस्मृति	मेधातिथि की टीका के साथ कलकत्ता, 1932, कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, बम्बई, 1946 ।
मत्स्यपुराण	वी0 एस0 अग्रवाल, वाराणसी, 1963 । आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना 1907, नन्दलाल मोर द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, 1954 ।
महाभारत	{संपादित वी0 एस0 सुख थांकर आदि 1966, नीलकंठ की टीका सहित, पूना, 1929- 33 गीता प्रेस गोरखपुर ।
रामायण	मद्रास 1933, गीता प्रेस, गोरखपुर । अध्याय 1 से 4 {संपादित} पी0एस0 वैद्य, बड़ौदा 1960-65 अध्याय 5 से 7 {संपादित} श्री निवास शास्त्री बम्बई, 1916-20 ।
राजतरंगिणी	अनुवादित एम0 एस0 स्टेन द्वारा अनुवादित वाल्यूम 2, 1961 ।
वायुपुराण	पूना 1905, {संपादित} आर0 मित्रा, 2 वाल्यूम कलकत्ता 1886 से 1888 हिन्दी अनुवादित आर0 पी0 त्रिपाठी, प्रयाग ।
वामनपुराण	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, एक अध्ययन वी0एस0 अग्रवाल, वाराणसी, 1966 ।
विष्णु पुराण	बम्बई, 1889, विल्सन, 5 भाग लन्दन, 1864-70 गीताप्रेस, गोरखपुर ।
शतपथ ब्राह्मण	अच्युत ग्रंथ माला कार्यालय वाराणसी, संवत्-1994-97 ।
शांखायन श्रौत सूत्र	{अनुवादित} डा0 डब्लू कालंद {संपादित} लोकेश चन्द्र, नागपुर ।
स्कन्दपुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।
सुत्तनिपात	{सं0 एवं अनु0} आर0 चार्ल्मस, कैम्ब्रिज 1932 फौसवोल लंदन, 1924 ।
संयुक्त निकाय	{सं0} लियोन फीयार 6 वाल्यूम लंदन 1884 से 1904 ।
हरिवंश	नीलकंठ भाष्य सहित, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता ।

REFERENCE BOOKS

Agrawal, V.S. : Studies in Indian Art, Varansi, (1965).
: India as known to Panini, Lucknow (1953)
: Indian Art, I (1965)
: Ancient Indian Folk cult.

Altekar. : Sources of Hindu Dharma in its socio-Religious Aspects.

Arun : Yashauon Ko Bharat Ki Den, Kusumanjali Prakasan, Jodhpur (1990).

Banerjee, J.N. : Development of Hindu Iconography Calcutta (1941).
: Some Folk Goddesses of Ancient and Medival India.

Basham A.L. : The wonder that was India, London (1951)
: (Ed.) Cultural History of India (1975)

Bahadur, K.P. : Caste tribe and culture of Ancient India, (1978).

Bajpai, K.D. : New Archaeological Discoveries in Vidisha, jurnal of Madhya Pradesh Historical society, No. 2 (1960)

Bhattacharya, B. : The Indian Bhudhist Iconography, Calcutta (1958).

Barth, A. : Religions of India Translated by Rev.J. wood, London(1921).

Binford, L.R. : An Archaeological Perspective. New York, Academic Press, (1972).

Bhandarkar, D.R. : Vaisnavism, Saivism and Minor Religions Systems. (1913)

Bloss, L.W. : The Budha and the Nagas.

B. Morris : The family, group structuring and trade among south Indian hunter-gatheres. In E. Leacock and R.B. Lee (eds), Politics and History in Band Societies, pp. 171-87 Cambridge, (1982).

Coomarswamy, A.K. : The Origin of the Budha Image 1972, 2nd Edition, New Delhi MRM Lal,

: Yaksas, Part I & II, Washington(1928-31)

: La Sculpture de Bharhut, Annals du Musee Guiment, Paris (1956),

: History of Indian and Indonesian Art, London (1927).

Chattopadhyaya, K.C. : Vedic Relision, Varansi.

Chattopadhyaya, U.C. : Subsistence variability and complex social formations in prehistoric Ganga: valley: Problems and prospect. Man and Environment Vol. 12, pp. 135-152, (1988)

: A study of Subsistence and Setllement Patterns during the Late Prehistory of North-central India. Unpublished Ph.D. Dissertation, University of Cambridge (1990).

: Against predictive laws in archaeology. Adhyayan, Vol.2, No. 2, pp. 93-94, (1992)

Collingwood, R.G. : The idea of History. Oxford, Oxford University Press, (1946)

Durham, W.H. : Resource Competition and human aggression, Part I : a review of primitive war., Quaternary Review of Biology. Vol 51, pp. 385-415 (1976)

Das, S.K. : Economic History of Ancient India, Calcutta,

Dube, S.C. : Indian Village, (1950),

Ellen, R. : Environment, Subsistence and System : The Ecology of Small-Scale Social Formations. Cambridge University Press, (1982).

Eliade, Mircea : (Ed) The Encyclopedia of Religion, volume -10 (1987), Macimilan Publish Company New York, Collier Machmilan Publishers London.

Goldstein, L. : One dimensional archaelogy and multi-dimensional people : spatial Organisation and mortuary analysis. In R. Chapman, I. Kinnes and K. Randsborg (eds), Archaeology of Death, pp. 53-59 Cambridge University Press (1981).

Gadgil, M. and Malhorta, K.C. : Adaptive significance of the Indian Caste-system : an ecological perspective Annals of Human Biology , Vol-10, pp. 465-578 (1983)

Gopal, L. : History of Agriculture in Ancient India Varansi, (1980).

Gopinath Rao T.A. : Elements of Hindu Iconography Vol II, Part I & II, Madras (1916)

G.R. Sharma : Exvances at Kausambi (1957).

Hodder, I. : (Ed.) Symbolic and Structural Archaeology, Cambridge University, Press (1982).

: Reading the Past : Current Approaches to Interpretation in Archaeology. Cambridge University, Press (1986).

Harle, J.C. : The Art and Architecture of the Indian Sub-continent, London, Penguine (1987)

Hopking, E.W. : Epic Mythology, Strassburg, (1915)

Joshi, J.R. : Some minor Divinties in Vadic Mythology and rituam. (1977).

Kirch, P.V. : The archaedogical study of adaptation : theoretical and methodological issues, Advances in Archaeological Method and theory (1980)

Misra, R.N. : Yaksha Cult and Iconography, (1981).

Macdonell, A.A. : Vadic Index, London ,(1912).

Miller, D. : Ideology and the Harappan civilization Journal of Anthropological Archaeology, Vol. 4, pp. 34-71, (1985).

Majumdar, R.C. : Corporate life in Ancient India, Calcutta (1918).

Negi, J.S. : Ground work of Ancient History,

Pandey G.C. : Studies in Origin of Bhudhism .

Radhakrishnan, S. : History of Indian Philosophy 2 Vol.(1923-60)

Sahlins, M. : Stone Age Economics London ,(1974).

Shrimali K.M. : (Ed.) Prachin Bharat Ka Itihas ,(1981).

Sharma, R.S. : Material Culture and Social Formations in Ancient India. Madras, Macmillan,(1983).

Sircar, D.C. : Select Incriptions, Calcutta ,(1942).

Thaper, Romila : Ancient Indian Social History Delhi , (1978).

: Ancient India.

Vogel : Indian Serpent Lore.

Vasu, Yogiraj : India of the age of the Brahamanas,(1969).

<u>Journals</u>

: U.P. Historical Annual Reports.

: Archaeological survey of India, Annual Reports, Calcutta .

: Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute.